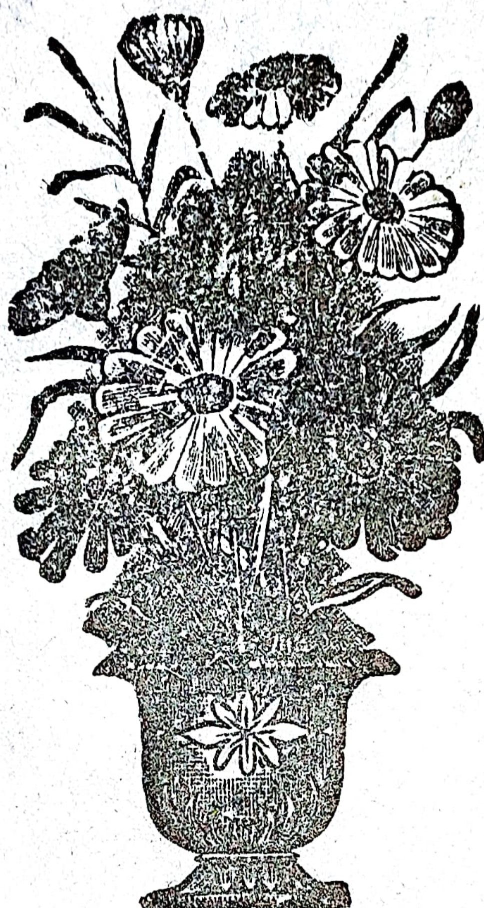
त्रिपाठी ग्रन्थमाला का छठवां पुष्प

श्री सुधा मंदाकिनी

* स्तोत्र *



प्रकाशकः—

श्री पं० चन्द्रेश्वरपति जी त्रिपाठी

श्री अयोध्या जी

❁ श्रीउमापति त्रिपाठी ग्रन्थमाला ❁

श्री सुधा मंदाकिनी स्तोत्र



भूमिका लेखकः—

श्रीरामलालजी

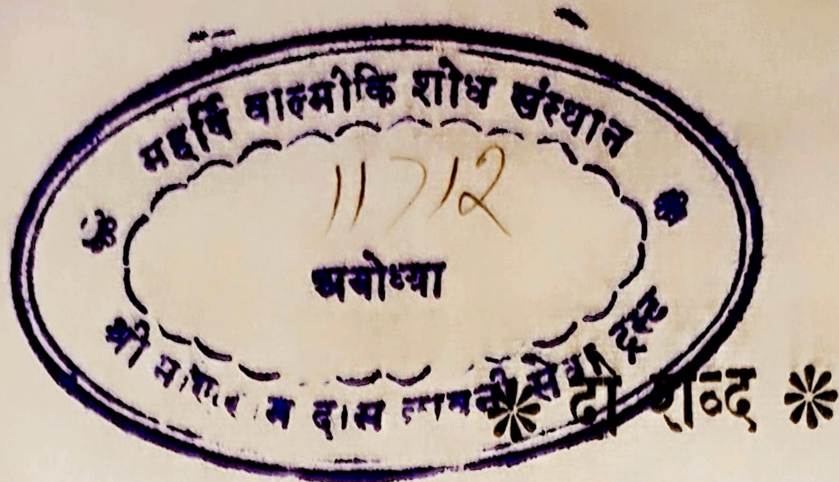
सहायक सम्पादक 'कल्याण'

प्रकाशकः—

पं० श्रीचन्द्रेश्वरपतिजी त्रिपाठी

स्थान—पं० श्रीउमापति त्रिपाठी जी महाराज

श्री अयोध्या जी



❋ दो शब्द ❋

भारतवर्ष की अध्यात्म सम्पत्ति सनातन और अनादि है। वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों, औपनिषद् मानवों दर्शन के मर्मज्ञों और धर्मशास्त्रज्ञों ने इसकी श्रीवृद्धि में समय-समय पर योग देकर इसकी अक्षुण्णता की रक्षा की है और विशिष्ट बात यह है कि इस परम्परा के पुण्यानुशीलन में सन्त-महात्माओं और विद्वानों ने भी अपने जीवन को तो सार्थक बनाया ही है, साथ ही साथ अपने समकालीन मानवमात्र की आत्म-चेतना भी जागरित की है। 'उमापति दिग्विजय' भव्य भारतीय साहित्यगत अध्यात्म परम्परा की चिरन्तन समृद्धि का अक्षर प्रतीक है जिसमें निर्गुण, परमानन्दमय, बोधस्वरूप गुरुतत्व की साकार महिमा अभिव्यञ्जित है। इस ग्रन्थदान में परम भागवत, अभिन्न वशिष्ठ श्रीउमापति के गुरुचरित्र, गुरुस्वरूप, गुरुजीवन की दिव्य झांकी प्रस्तुत की गयी है। 'उमापति-दिग्विजय' में रामभक्ति रसिक महामना उमापतिजी का अविकल चरित्र अमित श्रद्धामयी भाषा में वर्णित है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी मौलिकता यह है कि इसका प्रणयन हिन्दी भाषा में सम्पन्न हो सका है। संस्कृत में दिग्विजय काव्य की परम्परा अविच्छिन्न सी है और आदि शंकराचार्य के ही सम्बन्ध में अनेक दिग्विजय काव्य उपलब्ध हैं पर हिन्दी में इस तरह के काव्य नहीं मिलते हैं। इस बात को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि 'उमापति दिग्विजय' के रचयिता ने हिन्दी में दिग्विजय काव्य के प्रणयन की मौलिकता संरक्षित की।

उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जनपद के अन्तर्गत पुण्य सलिला गोमती के मनोरम तट पर स्थित धनावली ग्राम के महेशदत्त शुक्ल ने सम्वत् १६३३ वि० में इस ग्रन्थ का उर्दू से हिन्दी में मौलिक ढंग से रूपान्तर किया, वे उमापतिजी के अनन्य चरणचिन्तक थे इसलिये

प्रत्येक पंक्ति में भक्तिमय समर्पण का ही दर्शन होता है। यह काव्य अवधी बोली में लिखा गया है तथा इसमें भावपक्ष की ही विशेष प्रबलता है, यद्यपि कवि की शैली साधारण ही है। तथापि ऋषिकल्प उमापति जी की चरित्र गाथा से सम्पन्न होने के नाते इसमें रस, अलंकार तथा काव्य गत अनेक गुण अपने आप अभिव्यक्त दीख पड़ते हैं। वर्णन शैली संस्कृत दिग्विजय काव्य-परम्परा के ही अनुरूप है।

यदि विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी का बंगाल रामकृष्ण परमहंस की सन्त-परम्परा के लिये गौरवान्वित कहा जा सकता है, गुजरात स्वामी दयानन्द सरस्वती की उपस्थिति से समृद्ध माना जा सकता है, तो इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि गंगा, यमुना, सरयू और गोमती की शीतल जलधारा से बिचुम्बित उत्तर प्रदेश उमापति को पाकर धन्य हो गया। अध्यात्म के राज्य में उमापतिजी अभिनव वशिष्ठ थे, आचार्य कोटि में वे शंकराचार्य के अभिनव संस्करण थे और साहित्य-साम्राज्य में वे निस्सन्देह दूसरे पण्डितराज जगन्नाथ थे। यह कल्पना नहीं वास्तविकता है। उनके सुधा मन्दाकिनी, रम्यपदावली अयोध्या विंशतिका, सरयू अष्टक सरव्य सरोजभास्कर आदि सरस काव्य ग्रन्थ, इस स्वीकृति के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, इन भक्ति पूर्ण काव्यों में उनके साहित्यकार रूप का विलक्षण दर्शन होता है।

उमापतिजी ने 'कोविद' उपनाम से इन काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से उनकी गंभीर चिन्तन शैली और परिष्कृत भावभाषा का पता चलता है। सुधामन्दाकिनी पढ़ने पर मुझे ऐसा लगा कि मैं महाकवि माघ कीही रचनाका रसास्वादन कर रहा हूँ।

श्रीउमापति ने अपने समकालीन जगत की भक्ति चेतना ही नहीं, साहित्य-चेतना भी प्रदान की। उन्होंने भारत खण्ड के प्रधान प्रदेश नैपाल, नदिया, ग्वालियर, ब्रह्मावर्त आदि की यात्रा की, भागवत धर्म की विजयिनी पुण्यपताका फहरा कर श्रुति-स्मृति प्रतिपादित

सनातन धर्म का पुण्य संरक्षण किया। यह उनका असाधारण कार्य था, बड़े बड़े विद्वान उनकी बुद्धि और विद्या के चरणदेश में विनत हो गये बड़े बड़े लक्ष्मीपति राजा-महाराजाओं ने उनकी चरण धूलि मन्दाकिनी से अपना अभिषेक कर अध्यात्म का जयघोष किया। रीवाँ ऐसे विशाल राज्य के अधिपति महाराजा विश्वनाथ सिंह ने उनके दर्शन को अपना परम सौभाग्य समझा। शिवाजी के प्रधानामात्य की राजसत्ता के ऐश्वर्य प्रतीक पेशवा बाजीराव ने ब्रह्मावर्त में उनकी उपस्थिति को बड़ा महत्व दिया। लखनऊ के नवाब इतिहास प्रसिद्ध वाजिदअली शाह ने उनके चरण में अमित श्रद्धा दिखायी। लखनऊ की राजसत्ता ने उनके आशीष की याचना की। अयोध्या-नरेश दर्शनसिंह और उनके वंशज स्वनाम-धन्य परम रसिक कवि और महानसेनानायक महाराजा मानसिंह द्विज-देव ने अवध क्षेत्र में उमापतिजी का आतिथ्यसत्कार ही नहीं किया, उनके स्थाई निवास के समुचित प्रबन्ध में महान् योग भी दिया। अवध प्रान्त तथा उत्तर भारत के अनेक नरेशों और प्रतिष्ठित लोगों ने उमा-पतिजी महाराज के चरण में शिष्यत्वभाव चरितार्थ किया।

उमापति जी महाराज ने गोरखपुर मण्डल के प्रसिद्ध मझौली राज्य के अन्तर्गत पुण्य सलिला सरयू के तट पर पिण्डी ग्राम के एक सुपात्र ब्राह्मण कुल को अपने जन्म से धन्य किया था। भगवत्कृपा से वे पृथ्वी पर अस्सी साल तक बिराजमान थे। उनके उपास्य गुरुसदन विहारी राम थे जिनको वे अपने शिष्य के रूप में देखते थे, उमापतिजी अपने आपको वशिष्ठ मानते थे, उनके अद्भुत वात्सल्यभाव से समस्त अवध क्षेत्र आश्चर्य चकित हो उठा। वे उच्च कोटि के रसिक थे, इस नाते उनकी निष्ठा राम मे शरण्यभाव की भी थी। दशरथ नन्दन को वे राजारूप में भी उपास्य समझते थे। स्मार्त वैष्णव तथा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण होने के नाते उनकी राजसभा का सदस्य माने जाने में भी उमापतिजी अपना गौरव स्वीकार करते थे।

'उमापति दिग्विजय' का प्रकाशन हिन्दी साहित्य में 'दिग्विजय काव्य' परम्परा का महत्व स्थापित करता है, यह ग्रन्थ ऐति-हासिक और आध्यात्मिक मनोवृत्ति का परिचायक है विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी की चेतना का। मैं इस प्रकाशन का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। इस मौलिक प्रकाशन के लिये मैं उमापतिजी के वंशज पं० चन्द्रे-श्वरपतिजी महाराज तथा अम्बिकेश्वरपति जी त्रिपाठी को धन्यवाद देता हूँ।

मेरी कनक भवन पति राघवेन्द्र से यही अत्यन्त विनम्र प्रार्थना है कि श्री अवध क्षेत्र उमापति जी ऐसे परम भागवत सन्त-महात्माओं की उपस्थिति से सदा सम्पन्न रहे।

गीता उपवन
गोरखपुर
रंग पंचमी २०१५ वि०

रामलाल
सहायक सम्पादक
'कल्याण'



श्री पं० परमेश्वर दत्त शुक्ल जी
के कर कमलों में समर्पित
चन्द्रेश्वरपति:

शुभसम्मति

पुस्तकः-रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृ० सं० ३४७ से ३४८

लेखकः-डा० भगवतीप्रसाद सिंह एम० ए० पी० एच० डी०

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

पं० उमापति त्रिपाठी 'कोविद' की परम्परा नयाघाट-अयोध्या)

पं० उमापति जी वात्सल्य निष्ठा (गुरु भाव) के रामभक्त थे। इस भाव के वे अकेले ऐसे महात्मा थे जिनकी परम्परा अब तक चली आरही है। अयोध्या में स्मार्त–वैष्णवों का यह एक मुख्य आचार्यपीठ है। पं० उमापति जी के कोई पुत्र न था अतएव उनके पश्चात् उनके भाई पं० विद्यापतिजी त्रिपाठी के वंशजों का ही उस गद्दी पर स्वत्व स्थापित हुआ। कालान्तर में यह गद्दी चार पृथक पट्टियों में विभाजित हो गई। नीचे उनमें से प्रत्येक की परम्परा दी जाती हैं।

क—(१) श्री पं० उमापति त्रिपाठी (२) श्री पं० शिवरतनपति त्रिपाठी, (३) श्री पं०निरीक्षणपति त्रिपाठी, (४) श्री पं० रामेश्वरपति त्रिपाठी, (५) श्री पं० चन्द्रेश्वरपति त्रिपाठी (वर्तमान)।

ख—श्री पं० निरीक्षणपति त्रिपाठी के देहावसान के अनन्तर उनके द्वितीय पुत्र श्रीशिवेक्षणपति त्रिपाठी ने एक अलग गद्दी स्थापित कर ली। अब उसके अधिकारी उनके पुत्र श्री पं० शिवानन्दपति त्रिपाठी हैं।

ग—(१) श्री पं० उमापति त्रिपाठी, (२) श्री पं० रंगराजपति त्रिपाठी, (३) श्री पं० बब्बनपति त्रिपाठी, (४) श्री पं० राजारामपति त्रिपाठी (५) श्री पं० शीतलपति त्रिपाठी, (६) श्री पं० बन्धुपति त्रिपाठी, (७) श्री पं० सत्यदेवपति त्रिपाठी (वर्तमान)

श्री पं० राजारामपति त्रिपाठी की एक नई गद्दी स्थापित हुई जिस पर अब (घ) श्री अम्बिकेश्वरपति त्रिपाठी आसीन हैं।





श्री पं० उमापति त्रिपाठी जी महाराज 'वशिष्ठ'

❁ श्रीगणेशायनमः ❁

जानकीवदनाम्भोजमकरन्दमधुव्रतः ॥
पूर्णकामो घनश्यामो रामोविजयतेतराम् ॥ १ ॥
अयोध्यानगरे साधुःसर्वज्ञः साधुभूषणः ॥
युगलानन्यनामाभूद्रसिकानां शिरोमणिः ॥ २ ॥
तेन च प्रेरितः श्रीमानुमापतिमहाकविः ॥
सीतारामस्तुतिं नाम्नासुधामन्दाकिनीं व्यधात् ॥ ३ ॥
श्रीमत्पण्डितराजेन युगलानन्यसेविना ॥
प्रेरितोरामचरणस्तदन्वयकरोऽभवत् ॥ ४ ॥
दुरन्वयं वुधपतेर्वचश्रीमदुमापतेः ॥
जानन्ति तत्कृपापात्राः किञ्चित्तच्चरणस्मृतेः ॥ ५ ॥

❁ श्रीगणेशायनमः ❁

श्रीजानकीजीवनो विजयतेतराम् ॥ कुशल कौशलकोशल कोशला कुशलपालकवालक-लालिका कमलकैरव पालिकुलालिका न शि-थिलामिथिलाधिपवालिका ॥ १ ॥

कुशलेति । मिथिलाधिपवालिका जनकपुत्री मुदाऽऽन-न्देन विजयते इति पञ्चमश्लोकस्थेतक्रियापदेनान्वयः की-दृशी सा कुशलकौशल कोशलकोशलाकुशलपालकवालक-

लालिका कुशलंपुण्यम् कौशलं क्रियानैपुण्यम् कोशो धनस-
मृद्धिः ते विद्यन्ते यस्मिन्सः कुशलकौशलकोशलः सिध्मा-
दित्वादस्त्यर्थे लच्प्रत्ययः ततः कर्म्मधारयः कोशलाया अयो-
ध्यायाःकुशलस्सकलकलाभिज्ञः पालकोरक्षको दशरथस्तस्य बा-
लको रामस्तस्य लालिका लालनीया प्रियतमा पुनः कीदृशी
सा कमलकैरवपालिकुलालिका कमलन्दिवाविकाशिपद्मम्
कैरवं रात्रिविकाशिकुमुदम् तयोः पालिनौसूर्यचन्द्रमसौतयोः
कुले सूर्यचन्द्रवंशौतयोरलिका भूषिका सीतारूपेण रविकुला-
लङ्कारिणी रुक्मिणीरूपेण चन्द्रकुलालङ्कारिका तदुक्तं ल-
क्ष्मीस्तोत्रे'भृगोः ख्यात्याज्जाता जलधितनया क्वापिजनका-
त्प्रभूत्यै देवानान्धरणितनयावेदविदिता पदाऽऽदित्यः प-
द्मासकलगुणसद्मा समभवद्धरित्री वाराहे नृपवरसुताकृष्ण-
वपुषि' पुनः कीदृशी न शिथिला भक्तोद्धरणे न मन्दप्रय-
त्नेत्यर्थः ॥ १ ॥

परिमलै रमलै स्स्वतनोस्तनोः कुवलयेम-
लयेर्पितकुत्सिका किशलयेनिलयेम्रदिमावधे-
र्मृदुकरेणकरेणविधौविधे ॥ २ ॥

पुनः कीदृशी तनोः कृशस्य स्वतनोस्स्वाङ्गस्यामलैर्नि-
र्म्मलैः परिमलैः कुंकुमादिलेपैः कुवलये कमलेमलयेचन्दने
च अर्पिता दत्ताकुत्सानिंदा ययासा नैसर्गिक स्वशरीरामला-

लेपेन कमलचन्दनयोरामोदहरीत्यर्थः पुनः कीदृशी मृदुकरेणातिसौकुमार्य्यललितेन हस्तेन किशलये पल्लवेऽर्पितकुत्मिका कीदृशे किशलये म्रदिमावधेर्निलयो मृदोर्भावोम्रदिमाः सौकुमार्य्यम् तस्यावधिस्सीमातस्य निलये स्थाने कीदृशेन करेणविधेर्ब्रह्मणोविधौरचनायाङ्करेण किरणरूपेण वलिहन्तोंशवः कराइत्यमरः अयंभावः विरश्चिर्य्यदाकिश्चिद्विशिष्टम्यस्तुविधातु मिच्छति तदा जानकीकरसरोजं स्मरति ततस्तत्स्मरणा दागतस्फूर्त्या तद्विशिष्टङ्करोतीति शिवम् ।२।

परमया रमयास्वतनूरुहोनिरवधिः सुखधिर्व्यवधिंविना सुजगतीषुसती मसृणाघृणा विरचिता रचितासुविरंचिना ॥ ३ ॥

पुनः कीदृशी विरञ्चिना ब्रह्मणा रचितासु निर्मितासु जगतीषु चतुर्दशभुवनेषु सती पतिव्रता अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभेति रामायणात् पुनः कीदृशी मसृणा स्नेहवती पुनः कीदृशी घृणा दयावती पुनः कीदृशी विरचितां विविधं रचितं यस्याः सा पुनः कीदृशी स्वतनूरुहो रामस्य व्यवधिं विना सुखधिः स्वतन्वा शङ्खचक्राद्यङ्कित शरीरेण रोहत्याविर्भवतीति स्वतनूरुट्तस्य व्यवधिं विना व्यवधानं विना सुखं दधातीति सुखधिः श्रीरामचन्द्रस्य

सदा सुखकरीत्यर्थः पुनः कीदृशी परमया अत्युत्कृष्टया रमया शोभया निरवधिः अपरिमित सौन्दर्य्येत्यर्थः ॥३॥

जनककर्मसुधर्मसुरूपिका जनककर्मसुधर्मसुरूपिका विधिहरीश्वरशर्मसमर्पिका विधिहरीश्वरशर्म सुतर्प्पिका ॥ ४ ॥

पुनः कीदृशी जनककर्मसुधर्मसुरूपिका जनकस्य सीरध्वजस्य कर्म्माणि सन्ध्योपासनादीनि सुधर्म्माणि वापीकूपतडागादीनि तेषां सुरूपिका जनकस्य कर्मधर्माणिजानकीरूपेणावतीर्णानीति भावः पुनः कीदृशी जनककर्मसुधर्म्मसुरूपिका जनानां समूहो जनकम् समूहे कन्प्रत्ययः जनकानां भक्त समूहानां कर्मसुधर्माणि सुरूपयति निरूपयति भगवन्तं श्रावयतीति तच्छीला पुनः कीदृशी विधिहरीश्वर शर्मसमर्प्पिका विधिर्ब्रह्मा हरिर्विष्णुः ईश्वरो महादेवस्तेभ्यश्शर्म्मसुखं समर्प्पयति ददातीति ब्रह्माद्यानन्ददात्रीत्यर्थः पुनः कीदृशी विधिहरीश्वरशर्म्मसुतर्प्पिका विधानम्विधिः अनुष्ठानं यज्ञादि तं हरन्तीति विधिहरयो राक्षसास्तेषामीश्वरो रावणस्तं शृणातीति विधि हरीश्वरशर्म्मा रामचन्द्रस्तस्य सुतर्प्पिका तत्तृप्तिकरी शृ हिंसायामस्माद्धातोर्मन्प्रत्यये शर्मेति रूपम् ॥ ४ ॥

विजयतेजयते शवशम्वदा सुनयनानयना-
लिरसम्मदा श्रितसदासुख वर्षजिताम्वुदा श्रित-
सदासुखतर्षपदाम्वुदा ॥ ५ ॥

पुनः कीदृशी जयतेशवशम्वदा जयस्य समूहो जयता तस्या ईशो रामस्तस्य वशम्वदा मधुरभाषिणी पुनः कीदृशी सुनयनानयनालिः सुनयनायाः स्वजनन्या नयनयोर्नेत्रयो-रालिः सहचरी तयातिस्नेहान्नेत्रतो न पृथक्कृतेत्यर्थः पुनः कीदृशी असम्मदा अस्य वासुदेवस्य रामस्य सम्मदो हर्षो-यया सा मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसम्मदा इत्यमरः पुनः कीदृशी श्रितसदासुखवर्षज्जिताम्वुदा श्रितानां सेवकानां सदा सुखवर्षण्या सदा सुखवृष्ट्या जितोम्वुदो यया पुनः की-दृशी श्रितसदासुखवर्षपदाम्वुदौसतां साधूनामासमन्तात्सुख-म्वर्षतीति सदासुखवर्षोरामः श्रितौसेवितौसदासुखवर्षस्य रामस्यपदाम्वुदौ ययासा ॥ ५ ॥

गुरुजनेस्वजनेऽस्वजनेऽजने मधुरताधुर-
तासमतामता हृदयहारिविहारिविहारिका सुप-
थिला मिथिलावरदारिका ॥ ६ ॥

अथ युग्मेन स्तौति सा मिथिलावरदारिका जयति मिथिलावरस्य मिथिलापतेर्जनकस्यदारिका कन्या कीदृशी

हृदयहारिविहारिविहारिका हृदयहारी चित्तहरो विहारी रामस्तेन विहरतीति पुनः कीदृशी सुपथिला सुपन्थानल्लाँति व्रतमार्गं लाति गृह्णातीति पुनः कीदृशी गुरुजने स्वजनेऽस्वजनेजने मधुमताधुरतासमतामता गुरुजने वशिष्ठादौस्वजने–श्वश्रूश्वशुरादौ अस्वजने पौरजने जने सेवकादौ मधुरताधुरता-श्ऽसमतया मतामधुरस्य भावो मधुरता मधुरताया धूः मधुरताधुरसमास्य भावो मधुरताधुरता तस्याऽसमता तया यादृशी मधुरता श्रीवशिष्ठे तादृश्येव सेवकवर्गेइति समतानिष्पन्ने--त्यर्थः ॥ ६ ॥

अजनरीतिनरी वरकिन्नरी शुभसरीसृप--रीरसुरीसुरी पदवनीभवनीतितिरस्कृता जयति सा समसीधुपुरस्कृता ॥ ७ ॥

पुनः कीदृशी अजनरीतिनरी अजनस्य नारायणस्य श्रीरामस्य रीतिस्स्वभावश्शरणागतपालनन्नरति करोतीति शरणागतपालिकेत्यर्थः पुनः कीदृशीवरकिन्नरी वराकिन्नरी वेत्युपमितसमासः सामगानपरायणेत्यर्थः पुनः कीदृशी शुभसरीसृपरीः शुभस्य पुण्यस्य सरीसृपा उद्वेजका राक्षसास्तेषां रीः क्षयस्थानम् पुण्यविघ्न करक्षयकारिका इत्यर्थः रीङ् क्षये क्किपपुनः कीदृशी असुरीसुरी असुरीणां राक्षसीणां रावणानि-

द्दिष्टानां जानकीभयदर्शिनीनां सुरीदेवता वरदेत्यर्थः पुनः कीदृशी अवनीभवनी अवने पृथिव्या भवनञ्जन्म यस्यास्सा भूमिसुतेत्यर्थः पुनः कीदृशी ईतितिरस्कृता ईतयस्तिरस्कृता यया ईतयस्तुकामन्दके 'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषिकाशशलभाशुकाः अत्यासन्नाश्च राजानः षडेताईतयस्स्मृताः' पुनः कीदृशी समशीधुपुरस्कृता समस्सर्वपर्य्यायः समे सर्व्वशीधव-स्सुराः पुरस्कृता य आदृता यया सा शीधुर्मद्ये सुरापात्रे तत्पाने शीधुरुच्यते इत्यभिधानम् श्रीमद्रामायणे बालकाण्डे सुरा-सुरविभागे ब्रह्मणो वचनं सुरास्ते यैस्सुराप्राप्तेत्यादि ॥७॥

कलिमलाऽलिदला विमलोज्ज्वला जयज-
ला सुकला कमलाकुला सुकमला कमलारसपे-
शला जयतिसेशसुतेशजलेशला ॥ ८ ॥

कलीति सा सीता जयति कीदृशी कलिमलालिदला कलिमलपङ्क्तिविध्वंसिनी पुनः कीदृशी विमलोज्ज्वला विमलामयोध्यामुज्ज्वलयति यत्प्रभृति जनकपुरादागता ततो विपुलानर्थामधादिति भावः पुनः कीदृशी जयजला जयञ्ज-लयति वर्द्धयति जयवृद्धिकरीत्यर्थः पुनः कीदृशी सुकला सुन्दरी कला यस्यास्सा चतुः षष्टिकलासम्पन्ना पुनः कीदृशी कमलाकुला कमलेन पद्मेनाकुलाव्याप्ता धृतपद्ममालि-

का पुनः कीदृशी सुकमला सुन्दराः कमला मृगायस्याः पालिताऽनेकसुन्दरमृगेत्यर्थः यद्वा मल्यन्ते धार्य्यन्ते इतिमलाः कंकणादयः सुष्टु कायंतीति सुकाः मंजुध्वनयः सुका मञ्जुध्वनयो मलः कंकणादयो यस्यास्सा मलधारणे इति धातुः पुनः कीदृशी कमला साक्षाल्लक्ष्मीः पुनः कीदृशी रसपेशला रसाश्शृङ्गारादयः पेशला मधुना यस्याः सा पुनः कीदृशी ईशसुतेशजलेशला ईशसुतस्य गणेशस्य ईशस्स्वामी विष्वक्सेनः तदुक्तं यस्यद्विरदवक्राद्याः पारषाद्या परश्शतम् । विघ्नं निघ्नन्ति भजतां विष्वक्सेनं तमाश्रये।१। जले शेते इति जलेशः जलशायी नारायणः ईशसुतेशश्च जलेशश्च ईशसुतेशजलेशौ-लाति सेवकत्वस्वामित्वाभ्यां स्वीकरोतीति तादृशी ॥ ८ ॥

सुखयते नयते सुखकौमुदी परिदिशां विदिशां च दिशो दश पतिरमातिरमा परमासमा जयतिमानसमानमनोरमा ॥ ९ ॥

सुखेति परि यामुखकौमुदी मुखज्योत्स्ना दशदिशस्सुखयतेसा जयतीत्यन्वयः कस्मैपरदिशां पूर्वादीनां विदिशामग्न्यादिकोणानान्नयते नायकायइंद्रादये स्वस्वदिशिस्थिता इन्द्रादयो यन्मुखचन्द्रिकया द्योतिता विहरन्तीति भावः कीदृशी सा पतिरमा पत्यौ रामे रमणंयस्याः पुनः कीदृशी अ-

तिरमा रमामतिक्रान्ताऽतिरमा पुनः परमा सर्वोत्कृष्टा पुनः असमा अतुल्या पुनः मानस मानमनोरमा मानसे योगिनां हृदिमानः कूजनं यस्य तथाभूतस्य रामस्य मनोरमा ॥ ९ ॥

सितखरामणिशेखरशेखरा श्रितपरासुपरा-
सुकराध्वरा शुभपणा सुगुणा गतदूषणा विज-
यतेजितकौस्तुभभूषणा ॥ १० ॥

सितेति ॥ सा विजयते कीदृशीसितखरासितोवद्धः खरस्तन्नामाराक्षसो यया षिञवन्धनेक्तः पुनः मणिशेखर शेखरा-मणिशेखरो मणि श्रेष्ठश्चूडामणि श्शेखरे यस्याः पुनः श्रितान् सेवकान् परासून्मृतानपिपर्ति पालयतीति तथा पुनः सुकरा धरा सुकरस्सुखसाध्योऽध्वरो यज्ञो यया सा पुनः शुभ पणा शुभोमङ्गलप्रदः पणस्तवो यस्याः पुनः सुगणा सुन्दरास्सर्व कार्य्यक्षमा गणा विष्वक्सेनादयो यस्यास्सा पुनः गतदूषणा गतानि दूरीभूतानि दूषणानि सामुद्रिकोक्तानि कर--चरणादिरेखारूपाणियस्यास्सा पुनः जितः कौस्तुभभूषणो रामोयया द्यूतादौ बहुशो रामोजितस्सीतयेति रहस्य ग्रन्थेषु स्पष्टम् ॥ १० ॥

सदयितो दयितो जगतामसौ सुदयितो

दयितोऽपि समैस्सदा विजयते जयतेश्वरवन्दनः
समुदितो मुदितो रघुनन्दनः ॥ ११ ॥

असौ ॥ रघुनन्दनस्सदा विजयते सर्वोत्कर्षेण प्रवर्तते कीदृशोऽसौ सु दयितः दयितैः प्राणप्रियैर्लक्ष्मणादि बन्धुभिर्हनुमदादिभिश्चसहितः पुनः कीदृशः जगतान्दयितः जगतां चतुर्दशभुवनानां दयितः प्रियः प्राणरूपत्वात् पुनः कीदृशः सुदयितः शोभना दयिताजानकी यस्यसः पुनः कीदृशः समैर्दयितः समैस्सर्वैस्सौरादिभिर्दयितो गतः सर्वोपास्य इत्यर्थः तदुक्तं पाद्मे 'सौराश्शैवाश्च गाणेशा वैष्णवाश्शक्तिचिन्तकाः सर्वेरामम्प्रपद्यन्ते वर्षाम्भस्सागरं यथा' ॥ ११ ॥

स्वजन सज्जन रञ्जन लातकः स्वसुदया-
दिततद्गुरु पातकः ससुरभिः सुरभीति विघा-
तकः परमधार्मिक धार्मिक तातकः ॥ १२ ॥

दयित इति ॥ दयगतावित्यस्यक्तान्तस्यरूपम् पुनः कीदृशः जयतेश्वरवन्दनः जयतया ईश्वरैश्चक्रवर्तिभिर्वन्द्यते तादृशः यद्वा जयानां ग्रन्थानां समूहो जयता तदीश्वरैरुपनिषद्भिर्वन्द्यते यस्सः उपनिषत्प्रतिपाद्यइत्यर्थः पुनः कीदृशः समुदितः सम्यगुदितस्समुदितः सूर्य्यमण्डल मध्यस्थ इत्यर्थः ।

सनत्कुमारसंहितायां 'सूर्यमण्डलमध्यस्थंरामंसीतासमन्वितं' दिनकरमण्डल मण्डनेति गीतगोविन्दे 'ध्येयस्सदासवितृ मंडल मध्यवर्ती नारायणस्सरसिजासन सन्निविष्ट'इतिब्रह्मांडे पुनः कीदृशः मुदितः सानन्दः स्वजनेति रघुनन्दनो विजयते इति पूर्वेणसम्बन्धः कीदृक्सः स्वजनसज्जनरञ्जनचातकः स्वजना दासाः सज्जना नारदाद्याः तेषां रञ्जनं संरक्षणम् तस्य चातको पाचकः चते पाचनः इति धातोरार्वुलि रूपम् अयं भावः श्रीरघुनन्दनः प्रातरुत्थाय अस्मद्दासानां कुशलमस्त्विति प्रार्थयते पुनः कथम्भूता स्वसुदयादित तद्गुरुपातकः स्वस्यात्मनस्सुदयया परमानुकम्पया दितानि खण्डितानि तेषां स्वजनादीनां गुरूणि महान्ति पातकानि येन सः पुनः कीदृशः सुरभिः मनोहरः प्रख्यातो वा सुरभिः स्यान्मनोज्ञेर्यानितिविश्वः विख्यातेसन्निवेधीरेसुरभिःपरिकीर्तितः पुनः कीदृशः सुरभीर्तिविघातकः सुराणां देवानां भीतयो दानवकृता विविधापदस्तासां विघातको विध्वंसकः पुनः कथम्भूतः परमधार्मिकधार्मिका तातकः परमश्चासौ धार्मिकश्च परमधार्मिकः धार्मिकस्तातो यस्यसधार्मिकतातकः सचासौ सच सज्जनंतु भवेत्क्लीव मुपरक्षणधादयोः ॥ १२ ॥

समसुरा सुरकिन्नरसन्नराद्गुरुतमोप्यतमोनिजभाग्जने लघुतमेप्ययते दयते लघुः स्वयमहोश्रयते नयते यशः ॥ १३ ॥

निजजन वात्सल्यम्भगवति न चित्रमिति ध्वनयन्नाह शमेति हेसम सुरारकिन्नरसन्नराद्गुरुतमोपिभवान् लघुतमेपि निजभाग्जनेऽतमः प्रकाशमयते गच्छति दयते तस्मिन्दयाञ्च कुरुते सुराश्च असुराश्च किन्नराश्च सन्नराश्च तेषां समाहारः सुरासुर किन्नरसन्नरन् तस्मात् सुरा इंद्रादयः असुरा वलिप्रभृतयः किन्नरास्सुदर्शनादयः सन्नराश्चक्रवर्त्तिनः तेभ्यो गुरुतमश्श्रेष्ठः निजस्वात्मानम् भजतीति निजभाक् सचासौ जनश्च तस्मिन् निजभाग्जने स्वचरणसेवके लघुतमेऽतिशयेन नीचे जटायुशवर्य्यादौ तमोऽन्धकारम्तद्विरुद्धमतमोऽतिप्रकाशं अयंभावः सुरादिश्रेष्ठोपि भवान् अतिशयनीचानामपि स्वचरणसेविनां स्वात्मानं दर्शयतीति हे यस्मात् ये तवदासास्तव यशोऽधुः कर्णपुटैः पिवंतस्तान् भवान् स्वयमेव अहोति हर्षेण श्रयते सेवते भगवान् भक्त भक्तिमानितिभागवतेतानं स्वधामंनयते प्रापयति स्वधामेति शेषः अधुरिति धेटोरूपम् ॥ १३ ॥

विमलया मलयाचलसंजिता विकलया कलया सुरभिश्रिता सृतिरसौ सरदौघसिता सिता शु भवताभवता परिवासिता ॥ १४ ॥

पूर्वश्लोके भक्तवात्सल्यं दर्शितमिदानीं भक्तिमार्गमभिनंदति हेभगवन् असौ सृतिर्भक्तिपद्धतिः कलया स्वांशभूतया

स्वाचार्य्यं परम्परया शठकोपादिरूपया कृत्वा भगवतात्वया परिवासिता परिभाविता वासितम्भाविते रुते इति कोशः कलास्यादंश शिल्पयोरिति हैमः कीदृश्या कलया विकलया विशिष्टाः कलाश्शिष्य प्रशिष्यरूपा यस्यास्तया पुनः कीदृश्या विमलया अन्यदारया विगतो मलः कार्प्पण्यं यस्यास्तया मलोस्त्रीपापविट्किट्टे कृपणेत्वभिधेयवत् इति विश्वः कथम्भूतेन भवता आशुभवता आशु शीघ्रम् भवतीति तथा तेन मा धनान्तरे विलंवेन प्राकट्यम् भक्तौ तु झटित्याविर्भावः कीदृशी सृतिः मलयाचलसंजिता मलयाचलस्तदुपलक्षितो द्राविड़ देशस्सम्यक्जितो यया आहितान्यादित्वान्निष्ठापरनिपातः 'उत्पन्नाद्राविड़ेदेशेवृद्धिङ्कर्णाटके गतेति' पाद्मोक्तेः तत्रैव भक्तिमार्गो वर्वर्तितत्रैव चाचार्य्यवर्य्यास्समभवन् पुनः कीदृशी सृतिः सुरभिश्रिता सुरभिर्मनोज्ञैश्श्रिता सेविता पुनः कीदृशी सरघौघसिता सरघा मधुमक्षिकास्तत्तुल्या आचार्य्यवर्य्यास्तेषामोघेन वृन्देन सिता वद्धा भक्तिमार्गो वहुविधैर्मार्गैर्भामिनिभाव्यते इत्युक्तेरनेकविधा पुनः कीदृशी असिता अवद्धाकेनापि विलग्ना नहि भक्तिमार्गे विषमशंकालेशोऽस्तित्वयाभिगुप्ताविचरन्तिनिर्भयाविनायकाऽनीकपमूर्द्धसु प्रभोइति भागवतोक्तेः ॥ १४ ॥

सुमधुरा मधुराधवमाधवं व्यरचयद्रचयद्र-

समंततिः तव सदा विदिता विदिता कथा न वि-
तथासुपथाहृतसद्व्यथा ॥ १५ ॥

पूर्वश्लोके भक्तिप्रसारोभिहितः इदानीम् भक्तिपारतन्त्र्यम् भगवतोवदन् स्तौति सुमधुरेति रचयद्रससन्ततिस्त्वां मधुराधवमाधवं व्यरचयदित्यन्वयः रचयन्ती भक्ताश्चतुर्भुजान् कुर्वन्त रससन्ततिः भक्तिरस विस्तृतिः मधुराया मथुरानगर्य्या धवस्स्वामी स चासौ माधवश्चतम् भक्तिपरवशो भगवान् मथुरायाङ्गोपरूपेणावतीर्य्य गोपीभिस्सह ननर्त्तेति भगवतो भक्तिपारवश्यम् दर्शितम् कीदृशी सा सुमधुराशोभनो मधुर्नारायणो विद्यते यस्यां सा सुमधुरा वीरहामाधवोमधुरिति सहस्रनामस्तोत्रे मधुशब्दादस्त्यर्थेरप्रत्ययः तवकथा भक्ताधीनो हरिस्सदेति गाथा सदा विदिता प्रसिद्धा सा वितथा मिथ्या नहि कीदृशीकथा अविदिता केनापीयत्तया न ज्ञाता पुनः कीदृशी सुपथा हृतसद्व्यथा सुपथा भक्तिमार्गेण आसमन्तात् हृता सताम् भक्तानां व्यथा यया सा ॥ १५ ॥

तव नखांशुकलाविकलो विधुः क्षयति याति विलक्षण लक्षणं परमतावकतावकविश्रुतिः श्रुतिजनो न तनोति मनोव्यथाम् ॥ १६ ॥

सतां व्यथाहरणरूपम् भक्तिफलमभिधाय तन्मूलभूत-

भगवच्चरणारविन्दप्रभावस्तूयते तवेति हे परमतापक ! हेपरमेश्वर परमश्चासौ तापकश्च परमतापकः तत्सम्बुद्धौ तपऐश्वर्य्ये इत्यस्य तापक इति रूपं विधुश्चन्द्रस्तव नखांशुकलाविकलस्सन् क्षयति विलक्षणलक्षणं याति च नखांशूनां नखप्रभाणां कलयालेशेन विकलो मन्दकान्तिः क्षयति क्षीणो भवति विलक्षणलक्षणं विचित्रं कलंकं यातिप्राप्नोति श्रुतिजनो वेदपुरुषो मनोऽव्यथा न तनोति किन्तु संदेहनिरासकत्वात् मनसः कलिलतां नाशयति कीदृशः सः तावकविश्रुतिः तवेयं तावकी तावकीविश्रुतिः कीर्तिर्यस्मिन् सा नारायणपरावेदा इत्युक्तेः ॥ १६ ॥

सुरसिताऽऽरसिताऽतिसितासिता सुरसितातिसिताऽऽगममंजुकृत् सदमितादमितामितगीः सुगीर्ज्जयतियस्यसदस्य वयस्यभृत् ॥ १७ ॥

अथ भगवन्महिमप्रतिपादकम् वेदमेव प्रस्तौति सुरसितेति यस्य भगवतस्सुर्वेदलक्षणावाक्जयति सर्वोत्कर्षेण प्रवर्तते कीदृशी सा सुरसिता शोभनोरसस्सुरसः सोस्त्यस्यां सा रसश्शृंगारादिश्शांतादिर्वा पुनः कीदृशी आरसिता आसमन्ताद्भक्तैः रसिता आस्वादिता पुनः कीदृशी अतिसितासितासितासितम् प्रयागतीर्थमतिक्रान्तं यया सा ततोप्यतिमायेन

पापापहन्त्रीत्यर्थः पुनः कीदृशी असममादिभिस्सिता असुरै- रावणादिभिस्सिता निवद्धा व्याख्यानेन तथाप्यतिसिताऽत्यु- ज्ज्वलैव न तस्याम्व्याख्यातृदोषज्ञानभावः पुनः कीदृशी आ- गममञ्जुकृत् आगममुपासनाशास्त्रम् मञ्जुकरोतीति तादृशी पुनः कीदृशी सदमिता सद्भिर्दाल्भ्यादिभिरप्यमिता इयत्त- याऽनभिज्ञाता दाल्भ्येन हि समग्रम् वेदमध्येष्यामीति प्रति- ज्ञाय ब्रह्मणोलोकेऽध्युषितम् भूयसा कालेनापि पठित्वाकृ- तिवेदभागोऽवशिष्ट इति पृष्टोब्रह्मा मेरुतुल्यम् वेदराशिमन- धीतं प्रदर्शितवान् इतिस्कान्दे स्थितम् पुनः कीदृशी अद- मिताऽमितगीः दमः कर्दमः न विद्यते दमो यासु ता अदमि- ताः अतिनिर्मलाः अमिता अनन्ता गिरो यस्यास्सा अदमि- ता मितगीः पुनः कीदृशी सदस्यवयस्यभृत् सदसि योग्या- स्सदस्याः वयसि योग्या वयस्याः तान् विभर्तीतिभगवतस्स- दस्या वयस्या वेदं निरूपिताः ॥ १७ ॥

महिमहिन्व दहिन्व दनादरी सुमहिमामहि- भज्यदनादरी महिमहा महिपात्कदनादरी महि- मही नमहृत्सदनादरी ॥ १८ ॥

अथ कालापकेन प्रणमति कुमारश्श्रीरामो मनोहरता- मिति चतुर्थश्लोकस्थेन क्रियापदेनान्वयः कीदृशः कुमारः

महिमहिन्व दहिन्व दनादरी महिम्ना हिन्वन्तिवर्द्धन्ते इति महिमहिन्वन्तोविप्राः तान्नहिन्वन्ति न प्रीणयन्तीति महिमहिन्वदहिन्वतो विप्रद्रुहस्तेष्वदनादरो यस्यसः हि वृद्धौहि विप्रीणने उभयोश्शत्रन्तं हिन्वदिति रूपम् पुनः कीदृशः सुमहिमाशोभनो महिमा यस्य सः पुनः कीदृशः महिभज्यदनादरी भजन्तीति भजयः भज सेवायामस्मादौणादिक इः महीभूमौभजयोभक्ता स्तेषामदने तन्निवेदितान्ने आदरोयस्य पुनः कीदृशः महिमह।मह उद्धव उत्सव इत्यमरः महोविद्यते येषु ते महिनो विभूतिमन्त स्तेषु महस्तेजोयस्य सः यद्यद्विभूतिमत्सत्वमिति गीता पुनः कीदृशः महिपात् महिर्भूमिः पादो-यस्य सः दिष्ट्याहरेऽस्याभवतः पदोभुवइति भागवते पुनः कीदृशः कदनादरी कदनं पापं दुखं वा आदृणामति विदारयतीति पुनः कीदृशः महिमहीनमहत्सुदनादरीमहिम्ना जात्यादिगौरवेण हीनानां गृध्रराजशवर्य्यादीनाम् महान् सदने आदरोयस्य सः दण्डकवने महर्षिमण्डलमपहाय गृध्रराजशवरीगृहगमनेरामभद्रस्यप्रसिद्धम् ॥ १८ ॥

तरुतमालरसालरसालजित् करप्रवालप्रवालजिदर्कभः पृथुमृणाल मृणालजयश्रितश्शय विशाल विशाललसद्भुजः ॥ १६ ॥

पुनः कीदृशः तरुतमालरसालरसालजित् तरुतमालः

कालस्कंध वृक्षः लोके आम्रनूसइति प्रसिद्धः रसालश्चूतः द्वितीयोरसाल इक्षुःतान् जयतीतिकायकान्त्यातमालो निर्जितः वचनामृतेनेक्षु चूतौनिर्जितौ पुनः कीदृशः करप्रवालप्रवाल-जित् करप्रवालेन करपल्लवेनप्रवालं विद्रुमं जयतीति पुनः कीदृशः अर्भकः अर्भोबालः को ब्रह्मायस्य पुनः कीदृशः पृथु-मृणाल मृणालजयः मृणालं नलदेक्लीवं पुन्नपुंसकयोर्विशे मृणालं च मृणालं च मृणाले पृथुनी मृणाले जयतीति सौ-कुमार्य्येन विशं निर्जितं शैत्येन नलदं जितं पुनः कीदृशः शयश्रित विशालविशाल लसद्भुजः शयं हस्तं श्रितौ विशालौ धनुर्वाणौ यस्य विशेषेण शालेते शोभेतेऽस्त्रेष्विति वि-शालौ धनुर्वाणौ विशाला देवा वा लोकपाला भुजा हरेरिति वचनात् विशालौ महान्तौ लसन्तौ भुजौयस्य सः शयश्रित-विशालश्चासौ विशाललसद्भुजश्च ॥ १६ ॥

दुरितदार उदारसुदारको बृहदुदार उदार-सुदारकः धृतकुमारकुमार कुमारको धृतकुमार कुमारकुमारकः ॥ २० ॥

पुनः कीदृशः दुरितदारः दुरितम् पापं दारयतीति दुरि-तदारः पुनः कीदृशः उदारसुदारकः उदारा दानशौण्डा दारा जानकी यस्य सः पुनः कीदृशः बृहदुदारः बृहताम् बहुप्रदा--

नाम् मध्ये उदारः बृहदुदारः पुनः कीदृशः उदारसुदारकः उदारस्य चक्रवर्तिनो दशरथस्य सुदारक स्सुपुत्रः पुनः कीदृशः धृतकुमारकुमारकुमारकः धृता कुः पृथ्वी येन स धृतकुः मारः कामः कुमारो यस्यसकुमारः पुत्रः को ब्रह्मा यस्य सः सचासो सच पुनः कीदृशः धृतकुमारकुमारकुमारकः धृतो वद्धः कुमारः पुत्रः प्रल्हादोयेन सः धृतकुमारो हिरण्यकशिपुस्तं कुमारयति क्रीडयति कुत्सितम् मारयतिवा ॥ २० ॥

प्रहरतां हरतां हरितांहरेः प्रहरतां हरतां हरतांहरेः विहरतां हरतां जगतां मनो विहरतां हरतां सततं मनः ॥ २१ ॥

पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टः कुमारः श्रीरामस्सततं सदाविहरतां विहारं करोतु विशेषणेन विशेष्य परामर्शात् अस्माकमिति विशेष्यमध्याहार्य्यम् सचास्माकं मनोहरतां संसक्तं करोतु कीदृशा नामस्माकं विहरताम् विहारं कुर्वतांधनिनाम् मनोहरतां दम्भिनामित्यर्थः दाम्भिका हि गंगादिकूले स्थित्वा नाना वेषम् विधाय धनिनां मनोहरणपूर्वं तद्वित्तं हरन्ति ते हि तच्छिष्या भूत्वा वित्तानि समर्प्ययन्तीति प्रसिद्धम् पुनः कथम् भूतानामस्माकं जगतां गच्छन्तीति जगतस्तेषां वासनया इतस्ततो धावतां अत्र जगच्छब्दोन संसार-

वाचकः किन्तु कर्तृवाचकः गमेः क्विपि द्वित्वे रूपम् हरेरि-न्द्रस्य हरितामिन्द्रत्वम् परमैश्वर्य्यं प्रहरतां हरतां दूरी कुरुकुरु 'मा राज्यश्रीरभूत्पुंसश्श्रेयस्कामस्य मानदेति' तत्र दोषश्रव-णात् एः कामस्य प्रहरतां तज्जनितबाधां हरताम् दूरीकरोतु भवान् हरस्य भावो हरता तां हरतां श्रीवैष्णवतां हर प्रापय हरेरिति शकन्ध्वादित्वात् पररूपम् अत्रायम् भावः। 'मा देहि धनमैश्वर्य्यम् भोगापेक्षान् तिरस्कुरु देहि वैष्णवतां रामस्व-सक्तम् मन्मनः कुरु'। २१ ॥

विपरीतमदः सभासदः सततं श्रीरघुनन्द-चन्दहग गुरुतात उमापतिः सतींयुगुलानन्य-कृतेऽकृतस्तुतिम्। २२ ॥

विपरीतेति उमापतिः कविस्सतीं समीचीनां श्रीराम-विषयिणीं स्तुतिमकृत् कस्मै युगलानन्यकृते युग्मन्तु युगलं युगमिति धानं जपः युगं लातीति युगलः नास्त्यन्यो यस्य सोऽनन्यः युगलश्चासावनन्यश्च युगलानन्यः एतन्नामकस्सा-धुः सच साकेतान्तर्गतलक्ष्मणकोटस्थो रसिकशिरोमणिः त-त्कृते तदर्थम् कृते इति चतुर्थ्यर्थंतमव्ययम् कीदृश उमापतिः विपरीतमदः विशेषेण परितस्समन्तात् इतो गतो मदो यस्य सः निर्म्मत्सर इत्यर्थः पुनः कीदृशः सभासदः रामभद्रस्येति

शेषः पुनः कीदृशः गुरुतातः गुरुश्चासौ तातश्च पुनः कीदृशः सततं श्रीरघुनन्दचन्दहक् सततम् निरन्तरं श्रीरघुनन्द चन्द्रे हक् यस्य सः अनेन स्वस्य चकोरत्वम् अत्रोमापतिशब्दे वीररसः सभासदशब्देसख्यं गुरुशब्दे शान्तः तातशब्दे वात्सल्यं युगुलशब्दे शृङ्गारः विपरीतशब्देऽद्भुतः स्तुतिशब्दे दास्ये ॥ २२ ॥

श्रीमद्दंपति माधुर्य्यैश्वर्य सौंदर्यसत्सुधा ॥
सुधामंदाकिनी सेयम् पुनातु स्ववगाहकान् ।२३

भगवतस्स्तुतिफलमाह श्रीति सेयं लोकप्रसिद्धा सुधामन्दाकिनी स्वावगाहकान् पुनातु पवित्री करोतु मन्दानप्याकनयत्युद्दीपयतीति मन्दाकिनी सुधाया मन्दाकिनी सुधामन्दाकिनी अमृता काशगङ्गा अत्र शब्दार्थ विचार एवावगाहनं कीदृशी सा श्रीमद्दम्पतिमाधुर्य्यैश्वर्य्य सौन्दर्य्य सत्सुधा सुष्ठुदधातीति सुधासती चासौ सुधा च सत्सुधा श्रीमतोर्विविध शोभाशालिनोर्द्दम्पत्योस्सीतारामयोर्माधुर्य्यैश्वर्य्य सौन्दर्य्याणां सत्सुधा माधुर्य्यञ्च ऐश्वर्य्यञ्च सौन्दर्य्यञ्च तेषां सत्सुधा सत्प्रवाहिका ॥ २३ ॥

इति श्रीमच्चक्रवर्त्ति चक्रचूडामणिमहा--

राजकुमार सज्जितमार श्रीमद्रामसभासद्त्रि-
पाठ्युपनामोमापतिशर्मविरचित श्रीसुधामंदा-
किनीनाम श्रीदंपतिस्तुतिः शर्मप्रसितास्ताम् ॥

वर्षे व्याकरणात्रिखण्डवसुधो १९ ३८ पेते सिते माधवे सप्तम्यांङ्गुरुवासरे विरचितं श्रीरामचन्द्रस्तुतेः । व्याख्यानं सुलभङ्गणेशपुरके विद्वज्जनानन्ददम् विद्वद्वन्द्यपदस्य रामचरणोनोमापतेस्सत्कृतेः ॥ १ ॥ इति श्रीमल्लम्त्रोदरपुर निवासि-रामचरणशर्म्मविनिर्म्मित सुधामन्दाकिनी व्याख्यानम् ।



श्रीहनुमत प्रेस, श्रीअयोध्याजी ।

* श्रीगणेशायनमः *

आशीर्व्वादमहस्राणि दत्वाश्रीरामवर्म्मणे विंशतिका सर्वेषांबोधसिद्धये ॥ १ । यद्योगादितिसायोध्या अनिशं विजयते यद्योगात्षट्पुरः काश्यादयो मृतकेऽतिशयेनामृतस्य मोक्षस्य प्रदाः कोदृश्यस्ताःसंस्थाः सन्तिष्ठन्तोऽमरा यासु ताः अध्ययने श्रुतिश्रुतादीनामुत्तराधिका अध्ययनेन प्रशंसाप्रतिपादनेन चोत्तरा सा तत्र हेतुमाह श्रीरामरूपा अतएव वसिष्ठसंहितायामुक्तम् । सच्चिदानन्दरूपेयं रामरूपैव राजतइति । सर्वासु श्रीरामसम्बन्धेनास्या अपि तद्रूप सम्बन्धः स्फुटः सर्वसम्बन्धोपायमाह सर्वेभ्य इति ।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥ यद्योगान्मृतकेऽमृत
प्रदतरास्संस्थामराषट्पुरः सायोध्याध्ययनोत्तरा
विजयते श्रीरामरूपानिशम् । सर्व्वेभ्योऽथमहेश्वरः
परतरः श्रीरामतस्तारकं जप्त्वाऽयाचतयान्मृता
मृतमधिश्रीकाशि तत्सर्व्वगम् ॥ १ ॥

परतइति सर्वतः परतरो ब्रह्मा तत्परतरो हरिः तत्परतरो रुद्रस्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्त्वति श्रुतेः ॥ एतादृशो महेश्वरोधिकाशि काश्यां श्रीरामस्य तारकं जप्त्वा श्रीरामतो मृतानाममृतमयाचत् तत्सर्वगं सर्वनगरीनिष्ठम् बोध्यमितिशेषः

अयम्भावः महेश्वरस्य सर्वपरतत्वेन स्वतएव मुक्तिदातृत्वौचित्याद्याचनौचित्यात्तथा करणेनामृतस्य श्रीरामाधीनत्वबोधनाद्रामाभिन्नायोध्याधीनत्वस्यापि सूचनादत्रायाधीनत्वाभ्युपगमेऽन्यत्रस्वतन्त्रतया तत्करणे विरोधात्सर्वत्रैवैषागतिरेतदेव वक्ष्यतीष्टामित्यादिना ॥ १ ॥ ॥ १ ॥

इष्टमिति स्थालीपुलाकपदेन तद्गतशिथिलतण्डुलयणम एव प्रणः प्रतिज्ञानं यस्मिस्तादृशं सर्वपरीक्षणमिष्ठम् एतादृशपरीक्षणेनैव व्यवहारो भवति तदेवाह कृतपणमिति कृतः पणो यस्मिन् इति सर्वमहेश्वरीयनगरीवृत्तसिद्धम् तथा श्रीहरेः नगरीवृत्तमित्यनुवर्त्तते तत्र हेतुमाह तयोर्हरिहरयोर्भेदस्य नरकदस्याप गमात्यागाद्धरिनगरीष्वपितथा व्यवस्थेति भावः व्यवस्थाभेदे तयोर्भेदस्य दुर्वारतया नरकापत्तिर्दुर्वारेति बोध्यम् तदुक्तम् ॥ विष्णुरुद्रान्तरं यच्च यः श्रीगौर्य्यन्तरं तथा ब्रूते तस्य हि मूर्खस्य वाक्यं शास्त्रविगर्हितम् ।

इष्टं सर्वपरीक्षणं कृतपणं स्थालीपुलाकप्रणं सिद्धं सर्वमहेश्वरीय नगरी वृत्तन्तथा श्रीहरेः ॥ भेदस्यापगमात्तयोर्न्नरकदस्याथान्यथाप्युच्यतेऽयोध्यारामपुरी तथाथ मथुरा तद्वन्धुजा तत्करी ॥ २ ॥

विष्णुरुद्रान्तरं यच्च यो ब्रूते मूढधीस्तु सः नरकेषु समस्तेषु यातनासु पतत्यध इति ॥ अथान्यथा प्रकारान्तरेणाप्युच्य-तेऽयोध्यासम्बन्धः अयोध्या रामपुरी तथा मुक्तिकरी तत्र मुक्तौ सम्बन्धः सिद्ध एव साक्षात् अथ मथुरा तद्बन्धुजा श्री-शत्रुघ्ननिर्मिता तद्वदयोध्यावत्तत्करी मुक्तिकरीत्यर्थः । एक पितृजातभ्रात्रोरभेदेन तत्सम्बन्धः स्फुट एवेति भावः ॥ २ ॥

अन्यापि द्वारवत्यपि धन्या मुक्तिदातृत्वात् कुशो रामज इति आत्मा वै जायते पुत्र इति श्रुतेस्तयोरभेदः स्पष्ट एव अन्योप कुशस्तद्व्यावृत्तपक्षाहप्राधान्यादिति परो न हि चोद्यार्थे किञ्च सा रागवती सागरी या सागरे भवा अयोध्याधिपति-सगरसन्तानर्निमितखातान्तर्गतयायोध्यया सम्बद्धातदिति हेतुरुक्तो ग्राह्यः हे बुधजना अद्धेति प्रसिद्धौ अमृतैर्मोक्षैः पिन-द्धेतिकाञ्च्ययीशकृपया मुक्तिमश्नुते प्राप्नोति तत्र मृतेभ्यो ददा-तीति यावत् स तस्या ईशो नामान्तराद्वरदराजेतिनाम्नोराम एव

अन्याप्यत्र कुशस्थलीति विदिता धन्या
कुशो रामजः प्राधान्यादिह मन्यतेनचपरः सा
सा गरीयापि च ॥ सम्बद्धा तदयोध्यया बुध-
जना अद्धापि नद्धामृतैः काञ्च्यप्याश्नतिमुक्तिमीश
कृपया रामः स नामान्तरात् ॥ ३ ॥

एवञ्च रामसम्बन्धस्फुट एवेति भावः ।३। तदेवानुवदति तत्स्वामीति विष्णुकाञ्चीस्वामी वरदेश्वरोवरदराजः वरदातॄणां राजा श्रीराम एव कामक्रोधलोभान्विनाप्यभिलषितदातृत्वात् भामी क्रोधी कामी गृधो लोभी न याचकगणे कदापि द्विर्द्वि-वारं न राति ददाति एकदा दानेनैव तदैश्वर्य्याधिक्याद्या चकताया अभावादितिभावः कामक्रोधादिशून्यः श्रीराघवः सबरदराज इत्यर्थः । तदुक्तमभियुक्तैः क्वचित्पृथुकतण्डु-लात्क्वचिच्छाकपर्णाशनं क्वचित्प्रमिता च भूरभून्नरहरेस्तुष्टये अयम्विनिमयो महानिहावतारान्तरे न साऽस्ति रघुनन्दने प्रणतिमात्रराज्यप्रद इतितेन लोभाभावःस्फुटः कामक्रोधाभावो विदित एव अतएव वरदराजत्वम् तस्यवरदराजत्वे हेत्वन्तर-माह दित्सेति दाने व्ययभयाध्वाकुलतापरेषाम् एतस्य तु दानार्थमेव व्याकुलत्वम् अस्मै न दत्तम् कस्मै किन्देयमद्य नदत्तमित्यादिरूपम् अतएव प्रपीनं पुष्टतरं यशो यस्यसः। सदा कुत्साविहीनः स्वकर्मिकान्यकर्तृका स्वकर्तृकान्यक-र्मिका वा सा अस्ति कुत्साराहित्येनदयापि सूचिता तदाह-दीनस्येति विलीनमनसो दीनस्य सद्यस्तुदं समुत्सारयेदित्य-न्वयः स्वस्मिन्नावेशाद्वासनाभावाद्वा मनोलयो वोध्यः तेन वरदराजत्वावश्यकतावोधिता ॥ ४ ॥

तत्स्वामी वरदेश्वरो हि विदितो भामी न कामी

गृधोद्विन्नोंराति कदापि याचकगणे श्रीराघवः सो
थसः। दित्साऽन्याकुलितः प्रपीनसुयशाः कुत्साबि-
हीनः सदा दीनस्याथतुदं विलीनमनसः सद्य--
स्समुत्सारयेत् ॥ ४ ॥

अत एवासां सर्वपरत्वमित्याह नाभ्यइति आभ्यः सप्त-भ्यः पुरीभ्यः पराण्यन्यानि तीर्थानि तरन्त्येभ्यस्तीर्थानि तरणापादानानि तीर्थानि सन्ति समीचीनानि न सन्तिभुवन इत्यन्वयः अन्येषामवमत्वे हेतुमाह मुक्तेः पराणि क्वचिदपि विमलानि फलानि न सन्ति नश्वरत्वादिति भावः तदेवाह सत्स्वान्तीयमिति सतां ज्ञानिनाम्परभक्तिमतीत्वस्वान्तीयमा-नसिकम्फलमन्तिमञ्चतुर्षु फलेषु तदनन्तन्नित्यम् अन्येषांत्रि-वर्गाकांक्षिणामनन्तानि पूर्वाणि सान्तान्य नित्यान्यतएवाय-मानि सन्ति फलानि तीर्थानि चविशयात्संशयात्फलभाजां किमिदं नित्यं वा फलं दास्यतीतिसः तत् इतरेषाममवत्वमा-साञ्चोत्तमत्वमिति तत्सम्बन्धफलमिति विचारयासार इति वोध्यम् ॥ ५ ॥

नाभ्यस्सन्ति पराणिसन्ति भुवने तीर्थानि
भो मुक्तये मुक्तेन्नैव पराणि सन्ति विमलामाहो

फलानि क्वचित् ॥ सतस्वांतीयमनंतमन्तिमफलं सान्तान्यनन्तानितान्येन्तेषामवनानि सन्ति विशयात्सारो विचारो स्वयम् । ५ ॥

एतत्सम्बन्धमन्तरैव परत्रामृतमिति मतन्दूषयति स्वातंत्रादिति तन्त्रेषुपुराणादिषु आर्षत्वात्तत्वम् सा इतरतंत्रता–तत्तस्मात् सेत्यनुवर्त्तते सा कथा सर्वत्र बुधैर्बोध्या पवित्रः सुपन्था यस्यां सा पवित्रसुपथा श्रीरामसम्बन्धः पवित्रत्वं च श्रीरामस्य सर्वापेक्षपुण्यकारुण्यविश्राणनशालित्वात् अतएव सनूक्थो निष्पापको यस्यां सा कथनं कथः कविधानं घञर्थे सत्परिपाकत्वं श्रीरामसम्बन्धेनभ्रंससंशयशून्यत्वात् मया–धिपा कथिता परन्निगमाद्बाह्या न यतो न वाह्या ततो न गर्ह्या यतो न गर्ह्या ततो ग्राह्यत्यर्थः 'मन्वन्तर सहस्रन्तु जजा१ वृषभ ध्वजइति' मणिकर्णिक्यां यो म्रियेत स विमुच्येतेति सदाशिवप्रार्थनापञ्चक्रोश्यां यो म्रियेत सो विमुच्येतेति तापनीयो कथा ततोऽवधार्या । ६ ॥

स्वातन्त्र्यादितरत्र मुक्तिरिति चेत्सप्तस्वपि स्यात्तथा किन्तत्रेतरतन्त्र ताभ्युपगता तन्त्रेषुसा स्याद्वृथा, तत्सर्वत्रकथापवित्र सुपथा वोध्या बुधैः

सत्कथा बाह्या नो विगमाद्धि पात्रकथिता ग्राह्या न गर्ह्यायतः ॥ ६ ॥

तदेवाह रामस्येति अथर्वोक्त्याथर्वणिकतापनीयोक्त्या मुक्तौ महेशकृतया रामस्यार्थनया पावनया श्रीरामस्यानादित्वं परत्वं सर्वावतारित्वञ्चोक्तम् श्रिये कल्याणायहरजगति सत्परमं धन्यमतः परमपरं धन्यं नेति भावः ततो विमृश्यद्विविधैर्विबुधैर्भूदेवैः स्वर्देवैश्च शश्वत्सदासुमान्यं सुपूज्यम् अक्रुधैर्मात्सर्य्यादिशून्यैः श्रीमद्बुधैः सत्पण्डितैश्चेत्यर्थः एवञ्च वेदवाह्यत्वा भावस्स्फुट एवेति बोध्यम् ननु परत्वे विष्णुकथाविरुध्येतेत्याह शुक्लइति 'काकः काकः पिकः पिक इति' वत्प्रयोगः तथाचशुक्लत्वेनाभिमतइत्यर्थोलक्षणयेत्युद्देश्यतावच्छेदक विधेयतावच्छेदकयोर्भेदो बोध्यस्तथाचशुक्लतरोपि शुक्लः शुक्लतरोपि शुक्ल इतिवद्विष्णुरपि विष्णुर्म्महाविष्णुरपि विष्णुरिति कथयास्य विष्णुत्वमपि सदेवमहाविष्णुत्वादिति ॥ ७ ॥

रामस्यार्थनया महेशकृतया मुक्तावथर्वोक्त्या नादित्वञ्च परत्वमुक्तमिहसद्धन्यं सुमान्यं श्रिये। शश्वत्तद्विविधैर्विमृश्य विवुधैः श्रीमद्बुधैर-

क्रुधैः शुक्लः शुक्लतरोपि शुक्ल इति वद्विष्णु-
त्वमप्यस्य सत् ॥ ७ ॥

तदेवाह वेद्यमित्यादिना अस्य श्रीरामस्य महाविष्णुत्वमेव सत् तच्च वेद्यं वेद्यवेद्यम् तदुक्तमगस्तिसंहितायाम् 'वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मनेति' हृद्यं हृदयस्य प्रियमीश्वराणामपि अत एवावद्यभिन्नमनवद्यमनिन्द्य मिति यावत् उ इति वितर्के तर्कान्तरं आह चेदिति यदि तन्महाविष्णुत्वम्पीनया पुष्टयात्म कालप्रासीनयैकादशसहस्रसंख्याकवर्षस्थितया दशवर्षसहस्राणि दश तानि चेत्युक्तेः लीलया लोकोत्तरयाप्रातत्वमनन्तरं विष्णुत्वमेव परमिदं नेति शेषश्चच्छब्दबलादिति भावः चेदेवं स्यान्कथ महोमन्त्रेश्वरः सर्वजीवकल्याण कारिणर्वागमप्रवर्तकः शिवोमन्वन्तराणां सहस्रं रामस्य मनुं कथं जजाप तदुक्तं तापनीयेमन्वन्तरसहस्रन्तु जजाप बृषभध्वज इतिश्रयंभावः परमेश्वरस्यसर्वज्ञत्वादिना वास्तव विष्नुत्वेनैवोपासनौचित्याद्रामत्वस्याल्प कालिकत्वे नावास्तवात्कथन्तथा चरितं तन्नोचितमनौचित्यात्पर कृतन्तेन तेन मन्ये श्रीरामोमहाविष्णुरेवेति ॥ ८ ॥

वेद्यंहृद्यमवद्यभिन्नसुमहाविष्णुत्वमेवास्यस

चेतल्लौकिकलीलयात्मसमया प्रासीनयापीनया
विष्णुत्वन्तदनन्तरं कथमहोमन्वन्तराणां शिवः
साहस्रं प्रजजापतारकमनुं रामस्य मन्त्रे-
श्वरः ॥ ८ ॥

अथासुर बिमोहिनी मायया श्रीरामाचरित विपिन वैम-
नस्यादिवदिदमितितन्निराकरोति नहीति अस्य महेश्वरस्या
सुरविमोहिनी माया नहि समुचिता सा माया माधुर्य्येहि वि-
राजते अवधारणेहिर्बोध्यः तत्फलित निषेधमनुवदति नन्वि-
तिप्रभोः समदैश्वर्य्येकथञ्चिदपि नतुविराजते किञ्च समता-
पाविस्तुता प्रसिद्धेः शिवस्य तदुपासनन्त त्प्रार्थनं जनोचितम्
श्रीरामस्य भूभयमुचितं जिष्नुत्वाद्विष्नुत्वाच्चेत्याह श्री-
शम्भोर्विष्णुना समतापि सम्भवतिविष्णु रुद्रान्तरंयच्चयः
श्रीगौर्य्यन्तरन्तथा ब्रूते तस्यहि मूर्खस्य वाक्यंशास्त्रविगर्हितम्,
विष्नु रुद्रान्तरं यच्चयो ब्रूते मूढधीस्तुसः नरकेषु समस्तेषु
यातनासु पतत्यधः, तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्य्याद्धरि हरार्चनम्
नरलोकं समासाद्य न भूयस्तनयोभवेत्, यो विष्नुरुद्र एवासौ
योरुद्रोविधिरेवसः त्रयाणां भेदकृत्पापो नरके परिपच्यते इ-
त्यादिपुराण वाक्यैः उभयोरेकाप्रकृतिः प्रत्ययभेदाच्चभिन्नव-
द्भाति कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विनाशास्त्रम् इत्यभि-
युक्तवाक्येनसमताप्रसिद्धैव एवञ्चतेन समतास्तु अथानेन

महाविष्नुनाजिष्नुना रामेण सह प्रनाथनवतः प्रयाचनवतः श्रीशम्भोः सा समता न कार्य्येत्यन्वयः महाविष्नुत्वन्त्व स्योक मेवेति बोध्यम् ॥ ६ ॥

नह्यस्यासुरमोहिनी समुचितामाया महेशस्यसामाधुर्य्येर्हिविराजते न तुसदैश्वर्य्येकथञ्चित्प्रभोः। श्रीशम्भोः समतापि सम्भवति सा श्रीविष्नुनाजिष्नुनारामेणाथ सह प्रनाथनवतः कार्यामहाविष्नुना ॥ ६ ॥

ननु तर्हिमहाविष्नुः श्रीरामः शम्भोरुपासनं कथं कुरुतइत्याह शम्भोरिति राघवः प्रीत्यारुचेश्चशम्भो राधनं नित्योपासनं साधनं नैमित्तिकं पुरश्चर्य्यादिरूप माधुर्य्य एव प्रकुरुते सेतौरामेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापन प्रसिद्धमेव अतएव शम्भोः प्रीत्यैयो मया कारिधर्म्मः स्वेस्वे काले माननीयोभवद्भिः नानावर्णान् भाविनो भूमिपालान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्र इति दक्षिणादिशि तन्मुद्राङ्कितताम्रपत्रप्रसिद्धिः श्रुताः स्वयं च मधुरोमाधुर्य्यप्रियो नत्वैश्वर्य्यप्रियः अतएवोक्तं वाल्मीकीये यदब्रवोन्मान्नर लोक सत्कृतः पिता महात्मा विबुधाधिपो यमः तदेवमन्येपरमात्मनोहितं न सर्व लोकेश्वरभाव मव्ययमिति अथानिशन्तस्य श्रीशम्भोरैश्वर्य्य-

म्परापेक्षया परमाकलय्य विधार्य्य सख्यमपि प्रकुरुते तत्कीदृशं मुख्यं सर्व साधनेषु प्रधानं स्वसौख्यदम् अतएवोक्तं तत्र मित्रभावेन संप्राप्तन्नत्यजेयं कथं च नेति किम्वत् तादि सम्बन्धवत् स्वरुच्यैवपितृत्वगुरुत्वाद्यरी करोति भवति च स श्रीमान् सर्व प्रशस्तानित्य लक्ष्मीसम्पन्नपरः स्वतन्त्रो महा स्ववशीपरन्तु प्रेम्णस्थे मय्यस्मिन्नेवं यत्सुमन्त्रणं तत्तन्त्रस्तद्वशीभूतः सचासौपुरुषश्चेति ॥ १० ॥

शम्भोराधन साधनं प्रकुरुते माधुर्य्यएवानिशन्तस्यैश्वर्य्यमथा कलय्यमधुरः प्रीत्यारुचेराघवः । मुख्य सख्यमपिस्वसौख्यद महोतातादि सम्बन्धवत्प्रेमस्थेम सुमन्त्रतन्त्रपुरुषः श्रीमान्स्वतन्त्रः परः ॥ १० ॥

श्रीरामे विष्णुत्वम्प्रकारान्तरेण साधयेत् श्रीविष्णुत्वमिति किञ्च प्रपञ्चावने जगत्या लतार्थेद्विति सुतैवविश्नुत्वमञ्चति विष्णुभावमाकारं धर्म्मञ्च प्राप्नोति सैव पुरुषाधिकारतया ममवनं करोतीतिभावः अतएवाह सुरचनेति शोभनरचनवती अनेन प्रकृति द्वारा सृष्टि कर्तृत्वमपिध्वनितम् अतएव श्रीरामानुजाचार्य्येण मन्त्रार्थ व्याख्यायामागमीय बचनं लिखितम् सा सर्वजगतां नेत्री सीताविष्णुस्वरूपिणीयस्याः

कटाक्षमात्रेण मूलप्रकृति सम्भव इति नेत्री नायिका स्वामिनीतियावत् अतएवाभिदधातितन्त्रेयन्त्रितेतिकाञ्च्यासश्रितं संस्थापितं शोभायस्या इति श्रीकाञ्चनस्य जाम्बूनदादेः श्रीरिवश्रीर्यस्याइति विशेषणद्वयं शोभार्थम् परासर्वतः कारण कारणत्वादितिभावः अतएवाह नियमतोमाहात्म्यत इति परत्वेहेतुः तथा च शक्ति शक्तिमतोरभेदात्पत्न्या अर्द्धाङ्गि त्वस्थप्रसिद्धेस्तयोः श्रीजनकनन्दिनी श्रीरघुनन्दनयोः प्रकरणा द्बुद्धिस्थ त्वाच्चभेदमिदज्ञानेनाभेदेन मुनीशभणितौबाल्मीकीये विष्णुत्वमप्याश्रितमितिसम्बन्धः ॥ ११ ॥

श्रीविष्णुत्वमथाञ्चतिक्षितिसुताकिञ्चप्रपञ्चावने काञ्चीसञ्जितशोभनासुरचना श्रीकाञ्चनश्राः परा। तन्त्रेयन्त्रितवामतोनियमतोमाहात्म्यतोभेद भिदज्ञाने नाथतपोर्म्मुनीश भणितौ विष्णुत्वमप्याश्रितम् ॥ ११ ॥

प्रकारान्तरेण परत्वमभिदधाति विष्णोरिति अगस्यमुनिम्प्रति स्वयमेव श्रीरामेण श्रीवायुसूनोयु द्धकर्म्मविष्णोप्यधि अधिकं कथितम् तदुक्तं बाल्मीकीये नहीन्द्रस्य न रुद्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च तानि कर्माणि श्रूयन्ते यानियुद्धे हनूमत इति नहीदम्प्रशंसापरम्मिथ्याभूतम् बाल्मीकीये तदभावात

तदुक्तं परब्रह्म प्रसाद वाक्यतः न ते 'वागनृता क्वाप्ये काचिदत्र भविष्यतीति' श्रीरामस्य तु प्रतिज्ञैव नासत्यं कथ्यते मयेति वाक्यान्तरेण परत्वं प्रतिपादयति वाक्यइति वाक्य-- प्रतिश्रुते क्वापि कविरादि कविरिन्द्रो महेन्द्रइति कथितवान् 'इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं न शक्तोयुधि रामवध्यमिति' तत्र परेण महेंद्र इति पदेन विष्णुः कथ्यते सुरनायक इंद्र इत्य- नेन सख्या वृत्तिसिद्धस्तेन सएव गृह्यते इति हेतोः श्रीराम- चन्द्रः स्पष्टएव परः कीदृशः कष्टहरो जनानाम् यतः प्रदत्तसु- वरः श्रीकरः ऐश्वर्य्य सम्पादकः सत्याध्वरः सत्यमध्वरो यस्यसः एतेन तदुक्तावनृतत्वोत्प्रेक्षानप्रेक्षणीया सद्भ्योहितस्सत्यस्ता- दृशोऽध्वरोयस्यसत्याद्यामध्वरोयस्य सः ॥ १२ ॥

विष्णोरप्याधियुद्धकर्म्म कथितं श्रीवायुसूनोः स्वयं वाक्येक्वापि प्रतिश्रुते कथितवानिन्द्रोमहेन्द्रः कविः ॥ विष्णुस्तत्र परेण कथ्यत इति श्रीराम- चन्द्रः परः स्पष्टः कष्टहरः प्रदत्तसुवरः सत्याध्वरः श्रीकरः ॥ १२ ॥

प्रकारान्तरेण परत्वमाह कुण्डल्यामितियस्य कुण्डल्या- मेतादृशी ग्रहमण्डलीनिपतिता ज्योतिः शास्त्रमेव प्रतिपदि- कत्वेन वलं येषु ज्योतिःशास्त्रेषु वलं येषां वा तानि तैर्विमलैः

फलैर्म्मण्डिता नीचैः फलैः क्वेपि न खण्डिता परं कुण्ड-ल्या शुभफलानीतरफलखण्डितान्यपि भवन्ति न तथात्र तथा चैतादृशी कुण्डली नावतारिणि न वावतारेषुविदिता-तस्माच्छ्रीरामभद्रोऽमरो देवो मनोहरतरः सर्वपर इत्यर्थः।१३।

कुण्डल्यां ग्रहमण्डली निपतितायस्योत्तमै र्म्मण्डिता ज्योतिःशास्त्रवलैः फलैश्च विमलैर्नीचैः फलैः खण्डिता। नक्वापीत्यवतारिणि प्रविदिता नोवावतारेषु सातस्मात्सर्व परो मनोहरतरः श्री रामभद्रोऽमरः॥ १३ ॥

पुनः प्रकारान्तरेण परत्वमभिदधाति द्वेष्टारइति अथ-समे सर्वेऽतारा दुष्टनिकरस्य द्वेष्टारः शत्रवः संहारका भवन्ति तेषामवताराणां निग्रहणं परस्परमितिशेषः कुहचिन्नभवेत कुत-स्तत्र हेतुमाह तेषां समत्वादवतारत्वात् यदिक्वचिदवतारेणा-वतारस्य निग्रहस्स्यात्तर्हितत्कर्त्तरि निग्रहकर्त्तरिश्रुतिजुषां वेद-सेविनां भर्तरि विदांतदज्ञानिनां सर्व्वेश्वरत्वं मतम् अथराम-विनिग्रहात्परशुरामदण्डनात् श्रुतिजुषां विदांरामेऽवतारित्व धीरेवेत्यर्थः॥ १४॥

द्वेष्टा रःहि भवन्ति दुष्टनिकरस्याथावतारा-

स्समे तेषां निग्रहणं भवेन्न कुहचित्तेषांसमत्वाद्यदि।
स्यात्कर्तरि भर्तरि श्रुतिजुषामद्धावरित्वधी रामे-
रामविनिग्रहादथमतंसर्व्वेश्वरत्वम्विदाम्॥१४॥

पुनः प्रकारान्तरेण तत्वमभिदधाति तत्वमिति सतां सा-रग्राहिणां सुमतं तत्वं सिद्धान्तोमया निगदितं शर्म्माद्भुतं श-र्म्मणा तत् यद्वा अद्भुतं शर्म्म एतद्रूपंतत्वम् सच्छ्रुतम् स-द्भ्योमहद्भ्योवेदेभ्यो वा श्रुतम् न तु कपोलकल्पितम् इदं तत्वं सारवद्वोद्धृतमिव रसमस्यमास्वाद्यनीयमवश्यमेव सुहृदः सन्तोद्रुतं त्वरितमेव गृह्णन्तु कालविलम्बनायोग्यत्वात् किन्त-त्तदाह श्रीनवः श्रिया सर्व्वोत्तरयाक्षणे क्षणे नवयाः नवः क्षणे क्षणे नवः 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः इत्युक्तेः' तादृशः श्रीराघवः सर्वतः परतरात्सौन्दर्य्यादपि पर-तरः सौन्दर्येपरतत्वहेतुमाहवने तद्विहारे तद्दर्शनेन तत्रत्यानां मुनीनाम्मोहात् सुवेषपुरुषदर्शनेनवनितानां मोहः श्रुतः 'सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरम्पितरंसुतम् क्लिद्यन्ते योनयः स्त्रीणामित्यु-क्तेः' न तु मुनीनाम् विषयोच्छिन्नं मुनीनाम्मन इत्युक्तेः वन-इत्युक्तेराभरणांगरागाद्यभावोध्वनितः अतएव धन्योमान्य-तमानामीश्वरः मुनीनां गोहेमानं पद्मपुराणवचनम् 'पुरामह-र्षयःसर्व्वे दण्डकारण्यवासिनः दृष्ट्वारामंहरितत्र भोक्तुमैच्छ-

नृसुविग्रहम्' तेसर्वेस्त्रीत्वमापन्नास्समुद्भूतश्चगोकुले कामेन-
कृष्णासंप्राप्तास्ततेतेमुक्ताभवार्णवादिति ॥ १५ ॥

तत्वं सत्सुमतं मया निगदितं शर्म्माद्भुतं सच्छ्रुतम्
सारंतस्यश्रवश्यमेव सुहृदो गृह्णन्त सन्तोद्रु तम् ।
सौन्दर्य्यादपि सर्वतः परतरा मोहान्मुनीनां वने
धन्योमानतमेश्वरः परतरः श्रीराघवः श्रीनवः, १५

पुनः प्रकारान्तरेणाहगुप्तयेति गुप्तविहारे सारत्वं प्रकृत-
पदार्थ दर्शनाभावात्तस्य वियोगेऽयोध्याध्यासिनामनन्तदुःख-
भिया सर्वेभ्योऽमृतवितरणान्दिव्यरूपकरणे ने युक्तमयोध्या-
स्थसर्वामृतादिति तस्य श्रीरामस्य परत्वं स्पष्टम् अन्यत्रक्का-
पीश्वरकृतौ तद्व्यापरेतच्छ्रुतेः सर्वामृतवितरणा श्रवणात्
साकेतनिकेतानां दुःखेन स्वस्य दुःखान्ततसुखेन सुखात्प्रकृति-
वैचित्र्यं वरदयावत्वं ततः परत्वं स्ववियोगे दुःखातिशयत्वं
सर्वामृतदानौचित्पश्चानुवदतिकिञ्चेति अस्य श्रीरामस्य प्रकृ-
तेर्हेतोस्तत्वं परत्वम् कीदृश्यास्य विचित्रप्रकृतेः विचित्रा प्र-
कृष्टाच कृतिव्यापारो यस्य तस्य तेनैव समीमृत वितरणं द्यो-
तितम् प्राहेवेतिगुरुत्वाभावः आहच तदेव अयोध्यास्थे तने
सुखदुःखयोः समत्वं तज्जनसमत्वंसुखे सुखित्वं दुःखे दुःखि-
त्वम् तस्मिन्वरदये तयोः सुखदुखयोर्ल्लेखनात् वाल्मीकीये

चलितम् व्यसनेषु मनुष्याणां भृशम्भवति दुःखितः अथाप्य-भ्युदये तेषाम्पितेव परितुष्यतीति ॥ १६ ॥

गुप्त्यास्वस्य विहारसारकरणे योध्यास्थस-र्वामृतात्स्पष्टं तस्य परत्वपीश्वरकृतावन्यत्रका--प्यश्रुतेः । किञ्चास्य प्रकृते र्विचित्रप्रकृतेस्तत्त्वं समत्वं जनेऽयोध्यास्थे सुखदुःखयोर्वरदये तस्मि-स्तयोल्लेखनात् । १६ ॥

अथ गुणविशेषेण विशेषं वर्णयति दोषैकिन्दोषदर्शन-विनैवसुहृदां सन्तोषणं पोषणं कदापिहानं नैव राज्यश्रियो दानत्वतापहरणं शश्वत्सर्वदासुहृदां योनेर्निरीक्षणं नैव धीव-रेण वानरेण रात्रिचभिल्लातात्प्रसिद्धै व क्षणउत्सवस्तत्कृते तद-र्थम् एतादृशाचरणे तस्योत्साहो जायते अतएवानुक्षणं सदा प्रोक्षणं करस्पर्शेन तदङ्गरजोमार्जनम् यस्यैवमाचरणन्तस्य विलक्षणं तस्य विलक्षणस्य सर्वपरस्य सद्गुणं को वर्णये--त्कोपि नवाङ्मनसा गोचरत्वात् ॥ १७ ।

दोषान्वेषणम तरेणसुहृदो संतोषणं पोषणं हानं नैव कदापि तापहरणं दानञ्च राज्यश्रियः । योनेनैव निरीक्षणं क्षणकृतेऽथानुक्षणं प्रोक्षणं

शाश्वतस्य विलक्षणं निपुणकः कोमद्गुणं वर्णयेत् ॥ १७ ॥

विलक्षणगुणान्तरेण वैलक्षण्यं लक्षयति दोषेति केनचिद्दोषेण विक्षेपादिना यदि सुहृन्मां विस्मरति तद्याश्वेत्तं स्मृत्वा सुगतिं न यामीति एषमम स्वभावः तदुक्तम् 'यदि वातादि दोषेणमद्भक्तो मान्नसंस्मरेत् अहं स्मरामि तं नित्यं नयामि परमां गतिमिति' शुद्धा नियतिर्नियमो यस्य तस्येदृक् सदैवोद्घोषणं सेवासान्मनसः सेवाधीनमानसस्यानसः शोकस्य शोषणं हे बुधजनाः कस्तद्गुणान्वर्णयेदित्यर्थः अनल्कीवन्जले-शोकऽमातृस्यन्दनयोरपीतिकोशः ॥ १८ ॥

दोषेणाप्यथ केनचिद्यदसुहृन्मां विस्मरत्याश्वहं तंस्मृत्वा परमां नयामिसुगतिं ह्येषस्वभावोमम । ईदृग्यस्य सदैव शुद्धनियतेरुद्घोषणं शोषणं सेवासान्मनसोऽनसोबुधजनाः कस्तद्गुणं वर्णयेत् ॥ १८ ॥

गुणान्तरेण वैलक्षण्यं वर्णयति यस्येतिहेश्रीमन् लक्ष्मीवन् सरस्वतीवन् श्रीश्वते लक्ष्मीश्वतेपत्न्याविति श्रुतेः श्रीसरस्वत्यपि यद्वाश्शस्तैश्वर्य्यवन् श्रीरामस्य सम्बोधनान् प्रसन्नाः

सुहृदोयस्यतस्ययस्यैवं नियमः ये जनाः सकृदेवैकवारमेव प्रसन्नाः शरणागता जातास्ते वयमितिशेषः इत्यर्थनपरा याचनतत्परास्ते यो भूतेभ्यो ह्यभयस्यप्रदानेत्वरति अथो तस्य ते पुरुषस्य सतां गुणानां गाने को ह्यति कृपणो दीनतरस्तत्र हेतुः । सत्रण आधिव्याधिः सत्रणसहितः अनेहः पणः कालव्यवहारवांस्तदधीन इति यावत् निपुणः कुशलीस्यात्कोपि नेति भाव । १६ ।

यस्यैवं नियमः प्रसन्नसुहृदोजाताः प्रसन्नाजनाः श्रीमन्येसकृतेवशेऽर्थन परास्तेभ्यः प्रदानेत्वरा । भूते पुरुषस्याथो गुणानां सतां स्याद्गाने निपुणोऽहि कोऽति कृपणोऽनेहः पणस्सत्रणः ॥ १६ ॥

पुनः प्रकारान्तरेण वर्णयतियस्तुष्येदिति अथयः पुरुषः कथमपि केनापि प्रकारेण क्वचित्कचिदपि उद्भवतीत्युद्भवोद्भूता नवा नवीन पूर्वास्वस्य योऽपकृतिस्तया तुष्येत् पश्चादनन्तापकारं स्वतन्त्रप्रकृतिनः स्वाधीनस्वभाववान्नस्मरतिअतः प्रभुः समर्थो मनोवशीकरणात् अहोआश्चर्य्यं तस्य सद्गुणं कोवर्णयेत्कोपि नतस्य कीदृशस्यैवम्प्रकृतेः पवित्रविहृतेः पवित्रविहारस्य शश्वद्धृतेर्निरन्तरधैर्य्यवतः सत्कृतेः सतीकृतिः

क्रियायस्य तस्य देवस्य विहारशीलस्य गुणं कीदृशमद्भुत-मागमैर्नुतमिति शिवम् ॥ २० ।

यस्तुष्येत्कथमप्यथोद्भवनखस्वे कोपकृत्या-प्रभुः यश्चान स्मरतिस्वतन्त्रकृतिनोऽनन्तापकारं क्वचित् । तस्यैव प्रकृतेः पवित्रविहृतेः शश्वद्धृतेः सत्कृतेर्देवस्याद्भुतमागमैर्नुतं महो कस्सद्गुणं वर्णयेत् ॥ २० ॥

अथ कविर्विंशतिकामुभय नामिकांस्तौति श्रीमदिति श्रीमती सदैश्वर्य्यसम्पन्नाविविचित्रा मतिर्य्यस्यां सा मिष्टं मधुरं दधाति तादृशीष्टदास्याद्धरदभवेदिति सम्बन्धः किंसम्बंधिनीत्याकांक्षायामाह श्रीमदिति श्रीमद्राम इति ललामं रमणीयं भुक्ति मुक्ति तदुच्चारकसुस्वाददायिनाम यस्य सचासौ त्रिभुवनन्तकोटि ब्रह्माण्डयावत्स्थावरजङ्गममण्डल प्रत्यवानुत्तणसमीक्षकस्तस्य सद्भद्रस्य परकल्याण रूपस्य चन्द्रस्य सवाह्लादकस्य श्रीमद्राजकुमारश्चासौ मारस्य परमायाः शोभाया धिकारं करोति तादृशस्य प्रभोः सर्वस्वामिनः स्तुत्यस्तावक भावसम्बंधे षष्ठीसास्ताविकामित्रेत्यत्रापि तद-नुष्ठत्या सम्बन्धान्तर कल्पनयान्वयः मित्रं श्रीगुरुः सत्सुखस्वरूपः परमात्मनाभिन्नः श्रुति शिरसिद्धान्तात् 'गुरुर्ब्रह्मा

गुरुर्विष्णुरित्यागमोक्तेश्च स चासावुमापतिश्च तन्नामक-
विस्तत्कृतासद्भिस्ततस्तैस्संश्रितेतिसम्बन्धः आलस्यात्पदा-
नामर्थान्तरकल्पनाभाववर्णनात्प्रमाणान्तर प्रतिपादनञ्चनेति
शिवम् रघुनन्दनवन्दनास्याद्श्रुतिमद्विंशतिका सतांमता वि-
वृतिः प्रभिताथ तच्छ्रितकविना शर्म्मभृता सुनिर्म्मिता ॥२१।

श्रीमद्राजकुमारमारपरमाधिक्कारकारप्रभोः
श्रीमद्रामललामनामकविभोः सद्भद्रचन्द्रस्यसा ।
मित्रश्रीगुरुमादुमापतिकृतासद्भिस्तुता संश्रिता
श्रीमद्विंशतिकाविचित्रमतिकास्यादिष्टदामि---
ष्टधा ॥ २१ ॥

इति श्रीमन्महामहामहोपकुमारमारपरमाधिक्कारकार--
श्रीमद्रामभद्रगुरुमित्रसमासत्त्रिपाठ्युपनामोमापतिशर्म्मनि-
र्मितस्वनिर्म्मिततद्विंशतिका विवृतिश्शर्म्मदाभूयात् ॥ २२ ।

इति श्रीमन्महामहामहीपकुमारमार कोटि
परमजयकार श्रीमद्रामभद्र गुरु मित्रसभामत्त्रि
पाठ्युपनामोमापतिशर्म्मनिर्म्मित श्रीमन्ततस्तुविं-
शतिका श्रीमद्रसिकजभतासद्गतिकास्तात् १
चतुर्विंशतियुतांकशशांकमित वत्सरे ज्येष्ठश्रेष्ठ
दलाष्टम्यामङ्कितास्तुतिरद्भुता ॥ २२ ॥



* श्रीगणेशायनमः *

अस्मत्प्राणप्रियोजीयाद्रामस्सर्वरसाश्रयः।
सख्यशृङ्गारयोर्देवोविशेषेणतदाश्रयः॥ १॥
तत्रकेचिच्छुचिंप्राहुः प्रधानन्तदुपासकाः।
श्रीरामस्याग्रहात्सख्यम्परम्परमितीर्य्यते। २॥

तथाहि नाद्यादावारोपितामरप्रतिप्रादितप्रसिद्धशृङ्गारादि-रसाष्टके दर्शिके तत्प्रसिद्धयै वरसैः शृङ्गारकारुण्येत्यादावाद्य-काव्ये शृङ्गारस्ययुवरागवृद्धिरूपस्य प्राधान्येन प्राथम्येनतत्वे-पि न सख्यवात्सल्यापेक्षयातदुचितम् तयोस्तदीयशरीरस्थि-तिसात्त्स्थितिकत्वेनव्यापकत्वात्॥

द्वाएतासुपर्णासयुजासखायेति

श्रुतिप्रतिपादितत्वेन भागवतेपिबहुशःतदुक्त्या श्रीमद्र-घुनन्दनस्य श्रीमद्रामोपनिषदादिदर्शनेननारायणादिभिन्न-त्वेनकदापिगरुडवाहनत्वाभावेनाहं सखा ते काकुस्थेति रामा-यणीयवचनेनतत्प्रतीत्यामित्रभावेनसंप्राप्तंनत्यजेयङ्कथश्च--नेति श्रीमद्रामवाक्येन च सख्यस्यैवप्राधान्यप्रतीतेश्च यदा-यदाहिकौशल्येतिवचनेन तत्र सर्वरसान्तर्भावोपिनचारुः तत्र स-मयेशृङ्गाराभावात् अतएवभार्य्यावदितिशृंगारस्यापिदास्यादि

वदतिनानिर्द्दे शः पृथक् सङ्गच्छते नचेश्वरतयानित्यलीलास-
त्ययाचणिकत्वमयुक्तमेवेतिवक्तव्यम् माधुर्य्यप्राचुर्य्येण प्राकृ-
तप्रातिभ्याभ्युपगमात् अतएवोरसमुतोत्पत्तिः संगच्छतेति तत्र
च "पुत्रप्रयोजनाभार्य्येत्यादि" प्रतिपादनात् तदुत्तरं तत्तिर-
स्कारस्यैव धर्म्मिष्ठया च प्रतीतिरितिप्रत्येतव्यम् किञ्च तत्र
सर्वरसानान्नियतयातुल्यतयाव्यापकतोक्तेर्व्याघातएवज्ञात-
व्यः किञ्च श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिना।

मनुष्यो हि प्रातरुत्थायशरीर कार्य्याणिक-
रोतिततः सुहृदां ततः सम्बन्धिनामिति ॥

प्रत्यङ्ग वर्तिलोकस्यप्रतिपादनेनेतरसाबन्धे पेक्षयास-
ख्यस्यप्रत्यङ्गतयातस्यैवतत्वसिद्धिः नचभार्य्यायाः शरीरा-
र्द्ध तयाप्रसिद्धेः श्रृंगारस्य शरीरकार्य्यत्वमेवेतिवाच्यम् मान-
सविकाररूप भावविशेषस्यरसतयातस्य शरीरकार्य्यत्वाभा-
वात् तत्र प्रातरुत्थायेत्युक्त्याशरीरशौचादिरेवतत्कार्य्यत्वेना-
भिप्रेतत्वात् किञ्चशरीरार्द्धत्वंपाणि गृहीत्याएवश्रृंगारश्चसा-
मान्यवनितादावपीति न तस्यतत्कार्य्यत्वम् किञ्चार्द्ध शरीर-
त्वमित्यतिदेशएवेति तत्र चार्द्धत्वा तदेशेपिसख्यौसोऽहमि-
त्यप्रत्यभिज्ञायाऽभेदाध्यवसायात्सर्वत्वातिदेशान्तस्यैवतत्व-
मुचितमितिदिक् ॥ किञ्च श्रीमद्रामायणे ।

आढ्योवापिदरिद्रोवादुःखितः सुखितोपिवा
सदोषोवावयस्य परमागति ॥

रितिप्रतिपादनात्तयोः परस्परं गतित्वेनतद्रसस्यैवतत्वम्
नहिपत्न्यापतिर्गतिरितिवत्पत्युः पत्नीगतिर्नितिकेनाप्यभ्यु-
पेयते किञ्चमुक्तिसाधिकाभक्ति र्न नञ्याप्रेमापरासा सख्यमेवे-
ति चतुर्वर्गफलप्रधान चरमफलप्रदत्वेन प्रधानत्वस्यैवतथाहि
अनन्यत्वमस्यसमवायविषयानात्ममंवन्धा भेदस्याग्रयेविषये-
न्वैकशब्दप्रतिपाद्यत्वस्यैक धर्म्मित्वस्य च सत्वात् सखित्वस्यै-
कस्वीकारेमसिद्धिरितिद्वातदभ्युपगमेनोभयत्रविषयतासमवा-
यश्चेतिसम्बन्धाभेदाः सखिशब्दप्रतिपाद्यत्वञ्चोभयोरिति-
द्वितीयसिद्धिः सखिशब्दव्यवहार्य्यत्वमुभयोरितितच्छब्दप्र-
वृत्ति निमित्तभूतसख्यरूपधर्म्मस्यचैकत्वं स्फुटमेवपरत्रतुश्र-
वणादिर्यन्निष्ठं समवायेनसश्रोत्र प्रभृतिर्य्यन्निष्ठं विषयत-
यास श्रोतव्यप्रभृतिर्नितिसंवन्धभेदः शब्दभेदश्च धर्म्माणाञ्च
श्रोतृत्वादिश्रोतव्यादीनाम्भेदः स्फुटएव एवम्पतिपत्न्यादौ-
भेदः फुटइति एवञ्चानन्यममत्वाविष्णौममता प्रेमसञ्जितेति-
विष्णुपुराणवचनेनानन्यममतायाएव प्रमत्वेनानन्यत्वस्यो-
क्तत्वादयं ममसखेति ममत्वस्य च स्फुटतया।तत्वंस्फुटमेव
नान्योविष्णोरित्यशब्दार्थस्तुनविष्णावित्युक्तेरितरत्रतत्सत्वे-
प्रेमत्वाप्राप्तेस्तद्वैयर्थ्यात् शुश्रूषकभृत्यादौतस्यादुर्वारतयाव--

चन शतेनापिनिषिद्धमशक्यत्वाच्चेतिदिक् तत्वमधिक मत्र-
पातञ्जलं वृत्तैमन्निर्मितायांस्पष्टम् किञ्चप्रेममात्रोद्देश्यतया--
प्रेमत्वमस्यैव ॥

नापुत्रस्यलोकोऽस्तीतिश्रुतेः ॥

स्वर्ग्गादिलोकोद्देशेनपुत्राभिलाषएतल्लौकिकाभिलाष-
स्तुस्फुट एव। "पुत्रप्रयोजनाभार्य्ये"तिप्रतिपादनात्पुत्रार्थम्भा
र्य्याभिलाषः ॥

पितारक्षतिकौमारेभर्त्तारक्षतियौवने । पुत्रस्तु-
स्थविरेभावइत्युक्तेः ॥

स्त्रियास्तत्परिगृहे रक्षणम्प्रयोजनम् पालन लालनादि-
कम्पितुर्मातुश्च संसारानलसन्तप्तस्याशिष्यस्यातिनिवृत्तयेगुरो-
र्गुरोश्चशुश्रूषार्थं शिष्यस्यदासस्यस्वपालनायस्वामिनः स्वा-
मिन्नैश्वर्य्यइत्युक्तेरैश्वर्य्यवत् एव स्वामित्वात् स्वामिनः से-
वार्थंसेवकस्येतिविदितमेव सख्यस्तु सुखस्वरूपप्रसादयिषो-
स्त्विदं प्रेम्णएवाभिलाषः अतएवलोकेश्रूयतेएतस्यराज्ञस्ते-
नराज्ञासख्यमितिनकोपिसम्बन्धविशेषः परस्तत्र अतएव श्री-
रामायणेश्रीमल्लक्ष्मणवाक्यम् ॥

अनुरक्तोस्मिभावेनभ्रातरं देवितत्वत् ॥

इति भावेन प्रीत्येत्यर्थः, तस्यस्वस्यचेत्युभयमप्यध्याहार्यंमौपमिकत्वात् तत्वतः सिद्धान्तस्तच्च भावेनेत्यत्रैवान्वजितेन भावएवप्रयोजनं नान्यदितिस्फुटमेवप्रतीतम् श्रीमल्लक्ष्मणश्च सखैव'प्रियमाणसमोवश्योभ्राताचापिसखा च मे' सौमित्रिर्ममविदितत्प्रमानमित्रमिति श्रीरामायणे श्रीरामवाक्यात् उपकारस्तुपृथिव्यागन्धइवलक्षणं स्वरूपमितिवत् पृथिव्यागन्धाव्यभिचारवन्मित्रस्यापिनकदाप्युपकार व्यभिचारः यथाजलपृथिव्योरग्निवाय्वोश्चामित्रताउपकारः स्वतएव नकस्यापितस्याभिलाषः यथावाकाशं सर्वमित्रंस्यादित्यवकाशदानेन सर्वोपकारकतैवनायकारकता तयाचेतराभिलाषशून्यत्वेसतिस्वरूपभूतोपकारकत्वसमानाधिकरणोप्रेमरूपत्वंसखित्वमितिसिद्धम् तच्च चेतनेस्वतोजडे तदारोपितमितिविवेकः एवञ्चनिर्हेतुकतास्फुटैवतच्च परस्पर मेकस्य तत्सत्वेसख्याभावएवतद्विषयश्चलघुर्महान्वायथापृथिव्यपेक्षयाकाशम्पश्चाशद्गुणमधिकम्भूतानाम्प्रत्येकन्दशगुणावृध्यभिधानात् । "समानः ख्यायतेजनै" रितिसखेति व्युत्पत्तिवोधितसमानत्वमभिलाषशून्यत्वेनैवन्युत एवजीवेश्वरयोः श्रीरामनिषादयोस्सख्यं सङ्गच्छन्ते अभिलाषश्चद्विविधः सम्वंधाभिलाषः फलाभिलाषश्च तत्रद्वितीय शून्यताभावेनविरोधोवोध्यः सम्बन्धाभिलाषस्यचमुमुक्षुत्ववददोषत्वं किञ्चास्तिमातिप्रियमित्यत्राश्रितप्रतीत्याप्रियत्वेनचानुन्दताप्रतीत्याप्रियस्यभावः-

प्रेमेतिव्युत्पत्याप्रेमानन्दयोरेकतया तस्यस्वरूपतया सख्यु-
भाव: सख्यमिति तस्यापिह्वाएतेति श्रुतयास्वस्वरूपतयासमा-
नाधिकरण्येनसमनियत्वेन च पुराणेषुभक्तित्वेनोभयो: प्र-
तिपादनाभेदाध्यवसायादेकत्वमेवोचितम् भेदेप्रमाणाभावा-
त्फलभावाच्चएवञ्चेयंभक्ति: स्वरूपमेव असखित्वमसुखि-
त्वमितित्वविधाकृतमिति भगवत्प्रसादात्स्वरूप भूतैतद्भक्ति-
लाभान्मुक्ति: सिद्धे वसावात्पत्तिकदु:खनिवृत्तिर्ब्रह्मावाप्तिरे-
वसाचस्वरूप संपत्तिह्वारैव परञ्ज्योतिरुपपद्यतेस्वेनरूपेणसम्प-
द्यतेइति श्रुतेस्तदर्थश्चयदात्तीव: स्वेनरूपेणस्वाभाविकसुखित्व-
सखित्वादिनासम्पद्यते सम्पन्नोभवति तदापरं ज्योतिर्ब्रह्मो-
पपद्यतेतादृशउपपन्नोभवतीतिनिरञ्जनंसाम्यमुपैतीति श्रुति-
संगते एवञ्चब्रह्मभावोपपत्तिरूपकैवल्यस्यसिद्धि: सखित्व-
रूप स्वरूपज्ञानादभेदनानन्दरूपस्वरूपस्यापि ज्ञानात् भेदा-
ग्रहे सच्चिदुपलक्षणतयातस्यापिज्ञानाभ्युपगमात्पृथग्भक्ति-
त्व कल्पनेफलोभाव: स्फुटएवम्प्रथपरापीयमेव भक्तितथाहि-
परत्वंफलशून्यत्वं अनन्यत्वंजाग्रत्स्वप्नयोर्बाधरहिततदाकार-
चित्तत्वम् अभेदेनतत्स्वरूपचिन्तनत्वम्परम्पठितत्वं च तत्र फ-
लशून्यत्वानमत्वेउप पादिते एवं तृतीयं तु सख्यस्यैवोत्कर्ष-
विशेष: सचेषशुक्लोपिशुक्ल: शुक्लतरोपिशुक्लइतिन्यायेन-
सामान्येविशेषस्यान्तर्भूतत्वात्सिद्धएवशत्रुत्रित्रयोरेव प्रति-
क्षणंतकार चित्ततायथामारीचस्य श्रीरामाकारतापत्रेपत्रे तृणे-

त्वखोतदिष्टिः यथाभरतस्य हनूमतश्च प्रेयस्यादीनामपितथात्वे-
सख्यमेवावगन्तव्यं शृंगाराधारेतस्याभावात् अतएववाल्मीकी-
येतत्र सखीवचेत्युक्तं परं शत्रोभक्तेरभावात्कैवल्यं न भवति त-
दाकारचित तयेतरमुक्तिरेवतस्य मुक्तौप्रमाणं भागवतम् भया-
त्कं सइत्सायुक्तिमुक्तम् अभेदेन चिंतनमपिसख्यएव समानत्वे-
ना भेदा ध्यवसायात् परपठितत्वमपि श्रवणं कीर्तनं विष्णो-
रित्यश्रवणादिदास्यान्तपाठापेक्षयास्वतः सिद्धमेव ननुततो-
पिपरमात्मनिवेदनमितिचेत् तस्यापिसख्यविशेषत्वेनावयु-
क्त्यानुवादत्वात् आत्मनिंदनं हि लक्षणयात्मपदस्यात्मीय-
परतयातस्यकर्मणः तत्फलस्य च पुत्रकलत्रादेः कायस्यचित्त-
स्यसमर्पणमुतच्च सख्यएवसम्भवति ममोक्त सर्वसख्युश्चममै-
वेतिछद्मरहितानुसन्धानएवशुद्धन्तत्संपद्यते तथा च श्रीमद्रा-
मायणे सुग्रीववाक्यं श्रीरामंप्रति ।

रजतंवासुवर्णंवाशुभान्याभरणानि च ।
अविभक्तानिसाधूनाम वगच्छंतिसाधवः ॥

साधूनां सखीनां साधवः सखाय इत्यर्थः सख्यप्रकर-
णात् चाद्दारागारादयतथारावणवाक्यं वालिम्प्रति ॥

दाराराज्य पुरंराष्ट्रं भोगाच्छादन भोजनम् ।
सर्वमेवाधि भक्तंनौभविष्यतिहरीश्वरेति ॥

दाराविभागे पादमेवाद्ये वकार्य्यन्नसुरतं ॥

सखिभार्य्यादिगमने गुरुतल्पसमं स्मृतमितिस्मृतेः,

अर्ज्जुनपादसेवासत्यकृताभारतेलिखितेदिक् भक्तिरूप सख्यश्चशुद्धमेवांतर्य्यामीश्वरविषयकतया तस्याविदितत्वा-भावेनाशुद्धत्वेतदभङ्गापत्तेः प्राकृतानामतः करणवृतेरजानात्त द्विषयेकथश्चित्तदभ्युप गमेपिप्रकृतेतदसम्भवात् प्राकृते च सख्यपदं गौणमेवताद्दशानुसन्धानाभावात् विश्वासमानाधि करणस्नेहस्यैवसख्यस्थायितयाछलस्थलेतदभावात् तदुक्त-न्तुभरतभाष्ये ॥

नमातरिनदारेषुनसोदर्य्येषुवन्धुषु ।
विश्वासस्ताद्दशः प्रेमा याद्दङ्मित्रेनिरन्तरमिति ॥

ततसत्वेत्विष्टापत्तिः किञ्चसख्यंद्विविधम् सङ्कोच भय-सहितं तदसहितञ्चयथादरिद्रस्य सम्राट्सखित्वेस्वीयन्ते देयमिति कथायांनसङ्कोचोनभयं परन्तदीयं मदीयमितिक-थायामुभयं सम्पद्यते स साजस्तुताद्दक्कथयां नभयन्नापिसङ्को-चः तत्प्रसादेनविश्वासापादेनदरिद्रस्यापितयोरभाव इति तदभावेसम्राडहं मदीयं साम्राज्यमितिसम्वदमानस्य दरिद्र-स्यलोकोपहासमवगम्यते तदर्थमेव विलम्व्यसदाव्यभिचारि त्वसदृशविभवसमर्पणेनतद्दारिद्र्यविद्राव्यतदीयकथामवितथ-

श्रमापादयतिसम्राट् एवमेवनिष्किञ्चनान्यासिनोब्रह्मवागवे-
देन ब्रह्माहमस्मीत्यादिनाविश्वाससमासीना अनन्ताखण्ड-
ब्रह्माण्डखण्डनिर्मायिकनिर्मायब्रह्मसङ्कोचादिशून्याब्रह्मा-
हमितिसदाध्यवसायवशात्तत्प्रज्ञादेन लिङ्ग भङ्ग मापद्य-
तभावमापद्यन्ते तथा चात्मनिवेदनपदस्यतन्त्रेणायमर्थः आ-
त्मनि परेशेजीवकर्तृकं स्वकीयसर्व वस्तुकर्मकं निवेदनं य-
स्मिन्सख्येतदात्मनिवेदन मिदमादौतदन्वात्मनिजीवेपरेश-
कर्तृकं तदैश्यकर्मकंनिवेदनं यस्मिन्स्तदितितथा च सख्यस्यै-
वं भेदद्वयमितिभावः अतएव श्रीरामप्रत्यङ्गदवाक्यं निसृ-
ष्टात्मासुहृत्सुचेतिनिसृष्टात्मेत्यस्यनिदितात्मेत्यर्थः अनेने-
श्वरकर्तृकनिवेदनं स्फुटमेवद्वाय ॥

चतुर्विधाभजन्तेमांजनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानी च भरतर्षभ ॥

इत्युतज्ञानिनामेवफलराहित्येन भजनमितरेषां तुतत्सा-
हित्येनेतिनिर्णयादार्तादिसम्बन्धि प्राक्सख्यम् द्वितीयन्तु-
ज्ञानिसम्बन्धीतिविवेकः अतएव गीतायांस्वीकृतन्तदनन्तरम्
उदाराःसर्वएवैतेज्ञानीत्वात्मैवमेमतम्इतिएतत्तुसुग्रीवादीनामा-
र्त्त्वेन पूर्वम्पूर्वसख्यमेवजातम्पश्चात्परम् अतएवससर्वद्भज-
तिमां सर्वभावेन भारतेत्युक्तं सर्वोभावो धर्मोयस्मिस्तत्सर्व-
भावं सख्यन्तेनेत्यर्थः भावश्च दासात्वं बन्धुत्वमभिन्नत्वमि-

त्यादिः सख्युर्दास्येनदोषः दासस्य तु सख्यमसम्भवीतिभाव
अतएवप्रह्लादहनूमत्प्रभृतिषुसर्वसम्बन्धाभिधानं मुख्यंसख्य-
मेषाम् अतएव श्रीमद्भागवते हनूमद्वाक्यम् ॥

चकारसख्येवतलक्ष्मणाग्रज ॥

इतिसर्वभावेनेत्यस्य सर्वत्वेनसर्वं जगदयमेवेतिज्ञानेनेति
यावदितितुनार्थः सर्वविदित्यत्रसर्वज्ञत्वस्येश्वरएवसत्वेनेतर--
त्रतुमृदादिकारणज्ञानेनतदीयविकारमात्रज्ञानवदेकब्रह्मज्ञाने--
नतद्व्यापतत्तज्जगज्ज्ञानं सर्वमिदमेवेत्याकारकं सामान्यमेवेति-
तस्य च पूर्वत्रपरत्रैकाकारतयासर्वविदित्यनेनैवसिद्धस्सर्वभा-
वेन यस्यवैयर्थ्यापत्तेः सर्वभावेन सर्वसम्बन्धेनोक्तरूपेणेत्य-
पिगौरवेणपराहतं सर्वसंग्राह केकेनैवसिद्धेरितिदिक् 'हे कृष्ण
हे यादव हे सखे' त्यर्जुनग्लानिवाक्ये हे सखइत्युद्देशेन हे कृ-
ष्ण हे यादवेत्यस्यैवफल्गुभावयाभिधानेनग्लानिविषयत्वम्
तत्रैतियुष्मच्छब्दशोपादानेन सम्बोधनस्याप्यावश्यकतयावल्गु-
वचनेन सखइत्यस्यैव सम्बोध्यसमर्पकतेतिबोध्यं ज्ञानीत्वा--
त्मैवमेमतमृत्युक्त्यातद्भेदप्रतीत्यातदनुसन्धानस्याप्यावश्य-
क तयातत्रसख्यरूपभजनमेवोक्तन्तत्राभेदस्यशोभनत्वात् दा-
स्यादावभेदानुसन्धानन्तदभिधानत्वाशोभनं ज्ञानेचतदनु-
सन्धानन्तदनभिधानञ्चाशोभनसशोभनमेव किमुक्त्यभाव-
यतिश्चसर्वेषां संसारिणां रूपतोऽभेदसत्वेपि तदनुसन्धान-

म्विनामुक्त्यभाववत् यद्यपिपुत्रकलत्रयोरभेदसम्भवोऽस्ति-
आत्मावैजायते पुत्र इत्याद्युक्तेस्तथापितदनुसन्धानाभिधान-
योस्तयोरशोभनतैवपितुः पत्युर्गुरुत्वे न तदाज्ञाकारित्वस्यैवौ-
चित्येनतदनौचित्यादितिदिक् ननुतदननुसन्धानेपिकेवलभ-
क्त्यैवकैवल्यसिद्धिरितिचेन्नउरभेदबोधाः कत्राकथानां वैफल्या-
पत्तेः तत्रकथं चिन्दैयधिकरणयेनान्वयोप्ययुक्तोगौरवात् प्रि-
यतद्धित दौदाचिणत्याइतिन्यायेन प्रायस्तथाप्रयोगेणवेदपुरुष-
स्यतदसम्मतत्वाच्च एवञ्चयथामारीचादीनां मत्सभावेपिचि-
तस्यतदाकारतयाकैवल्येतरमुक्तिरेवमभेदानुसन्धानेसख्यम-
न्तरेणकैवल्येतरमुक्तिप्रसङ्गएवावगन्तव्यः यद्वानेकजन्मसं-
सिद्धस्ततोयातिपरांगतिमितिन्यायेनजन्मान्तरेपूर्वसंस्कारो-
त्कर्षात्सख्यसद्भावात्कैवल्यमितिएवं केवलं ज्ञानादपिनकैव-
ल्यन्तयामुक्ति न चान्यथेपिपञ्चरात्रविरोधादनन्यभक्त्यात-
द्विपुलपादंत्यन्तदभावाद्वल्लकोनामितिशाण्डिल्यमुनिवच-
नविरोधात्पूर्वोक्तगीतावाक्यबोधितज्ञानानन्तरितभजनप्रति-
पादनविरोधाच्चगीतातात्पर्य्यान्तरपदार्थान्तरकल्पनेनमुनिव-
चन विरोधमवलम्व्यस्वैक कल्पकल्पकानामिदानीन्तनानां
ज्ञानिनामपटव्यवहितवस्तुज्ञानशून्यानां समधीतवेदवेदान्ता-
दितत्सिद्धान्तस्सम्पादकसमाधिमतः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधान-
प्रसितपरावरज्ञ श्रीशाण्डिल्यादिमुनिकलहोपरिहार्य्यएवसोपि

घटानांनिर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्चकलहः ॥

इति न्यायोदाहरणभूएवप्रतिभाति एवञ्चभेदानुसन्धा-नरूपज्ञानमात्मनिवेदनरूप सख्यरूपमेव अभेदबोधक वेदान्त वाक्यानि ॥

सदारामोऽहमेवं तत्वतः प्रवदन्तिये ।
नतेसंसारिणोनूनं रामएव न संशय ॥

इत्यादीनिसख्यपराण्येवेतितत्वम् अत्रायमपिविमर्शः स्वरूपेणसंस्थितासंविन्नकाप्यंसाधिकाप्रत्युतप्रतिबन्धिकात-दुक्तम परोक्षानुभूतौ श्रीशङ्करस्वामिना ॥

कुशलाब्रह्मचार्यायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ।
पच्यन्तेनरके घोरेयावच्चन्द्रदिवाकराविति ॥

भक्तस्तुतत्साधिकायथाऽजामिलादीनां तथा च ऋषभ-देवसदृशानां परमहंसानां लख्यानुसन्धानाभवेपिस्वरूपस-देव सख्यकैवल्यकम् परिमितिवस्तुसम्भितसम्पन्नातुभक्तानु-सन्धानमावश्यकन्नारदादिमहामुनिसमनुष्ठितत्वात् ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनइतिन्यायात् ॥

किञ्चकलौकेवलभक्तिर्मुक्तिसाधिकाभवितुमर्हतिनतुके-वलवलज्ञानम् तदुक्तम्पद्मपुराणेनारदेनसत्यादित्रियुगेज्ञान वैराग्येमुक्तिसाधिके कलौतुकेवलाभक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी,

नृणांजन्मसहस्रेणभक्तौप्रीतिर्हिजायते ।
कलौभक्तिर्कलौभक्तिर्भक्त्याकृष्णः पुरः स्थितः ॥

इतिपूर्वश्लोकेपरत्रकेवलपदोपादानेनपूर्वात्रानुपादानेन सत्यादियुगेष्वपिकेवलज्ञानवैराग्ययोर्न मुक्तिसाधकत्वमपि-तुभक्तिसम्वलितयोरेवेति तथा च सिद्धमात्मनिवेदन रूपस-ख्यभक्तौपरत्वम् एवञ्चैतत्पूर्ववर्तीभक्तीनाम्भज्यतेऽनयेति-करणव्युत्पत्यासाधनरूपताऽस्यान्तुभजनम्भक्तिरितिव्युत्प--त्याफलरूपतैवप्रेमरूपत्वात् कर्म्मसंहाररूपव्यापारवत्वेनभ---क्त्यैकरणत्वे न क्षतिः दासोपिस्वामिप्रसादवशेनसखाभवितुम-र्हतीतिपूर्वपरभक्त्योः साध्यसाधनभावेनाङ्गाङ्गिभावः स्फुट्--एवेतिविवेकः विश्वसखीतरभक्तानां कदाचित्कथञ्चित्यागस-म्भवेपियथाजयविजययोः परं सखीनां दोषसभावेपिनकथ--मपित्यागः तदुक्तं श्रीमद्रामायणे ।

मित्रभावेन संप्राप्तं नत्यजेयं कथं चन ।
दोषोयद्यपितस्यस्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥

इदञ्च श्रीरामवाक्य प्रतिज्ञारूपन्तञ्चकथमप्यन्यथाभवितुंना-र्हतिसर्वथासत्यरूपत्वात् तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम् ॥

वेदवेद्येपरेपुंसिजाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मनेति ॥

वाल्मीकिरभवद्ब्रह्मवाणीवाक्तस्यरूपिणी तिस्कदे
न ते वागनृताकाव्येकाचिदत्रभविष्यतीति ॥

श्रीब्रह्मणोवाक्यं श्रीवाल्मीकिम्प्रति श्रीरामसत्यतायां प्रतिज्ञायां श्रीरामायणवचनात् ।

नाभिदद्यान्नगृह्णीयात्सत्यंब्रूयान्नचानृतम् ।
एतद्ब्रह्मण्यदेवस्यरामस्यव्रतमुत्तमम् ॥
अनृतंनोक्तपूर्वम्मेनचवक्ष्येकदाचन ।
एतत्तेप्रतिजानामिसत्येनैवशपामिते ॥
अप्यहं जीवितंजह्यांत्वां वा सीतेसलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञांसंमृत्यब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥

अतएवतेनमैत्रीभवतुतेयदिजीवितुमिच्छसीतिरावणं प्रति श्रीजनकनन्दिनोवचनम् अत्रजीवनं मुक्तरूपलक्षणम् त्यागाभावात् रावणस्यैवंसीतापराधिनोहानं भवेत् इतरेषांकाकथेतिस्फुटमभिहितञ्च श्रीजनकनन्दिनीतिसीमकारुण्यमिति एवञ्चोत्कर्षशालीफलसाधकत्वादपि परत्वमस्त्येत्यलम् स्यादेतत् आत्मनिवेदनपदेनशृङ्गारएवकुतोनादीयते आत्मपदेनदेहस्यापि ग्रहणात्तन्निवेदनस्यतत्रस्फुटत्वाद्विहरणवितरणसहसरणेषु तथा च परपठितत्वरूप परत्वन्तत्रैवसम्पन्नमिति चेन्नैवम् तथा हि सतिस्फुटप्रतिपत्तयेशांतादिरसेषुशृङ्गारपद-

स्यैव प्रयोगेण च दास्य सख्यसहचर्येण च सख्यं शृङ्गारएव-
शृंगारकस्तथा शुचिरितिस्मृताशुचिरितीरितोतिवापाठस्यैवौ-
चित्यात् पाणिगृहीतीतवास्तत्पित्रादिभिरेवनिवेदितत्वेन--
स्वत्वेनविदवदात्मनिवेदनपदव्यवहार्य्यत्वानौचित्याच्चशृंगा-
रस्यसमान्यवनितादावपिसत्वात्तत्रात्मनिवेदनभावेनतत्पर्य्या-
यत्वा भावाच्चनिवेदनं हि तत्रव्यवह्रियते यत्र निवेदनाधारक-
तृकनिवेदितपदार्थकर्म्मकदानादियोग्यतेतिस्फुटमेव तनुशा-
न्तवात्सल्यसख्यशृंगारदास्यानि पञ्चरसासज्जनसम्प्रदायप्र--
सिद्धास्तत्रशान्तस्यज्ञानाश्रयकलयप्रसिद्धतयाभक्तिर्भेदेष्वमु-
यादानम्भवतुनामतथावयस्योत्तमेप्रीति भक्तिरवमउत्तमस्यसा-
वत्सलतेतिप्रसिद्ध्यावात्सल्यस्यभक्तिभेदात् वेदेषुतदनुपादा--
नमित्यपिस्थानेपरन्त्रयाणान्तद्भेदेषुयोग्यवैवेतिद्वयोरुपादा-
नेशृंङ्गारस्यानुपादानेवैवैष मितिचेन्नपादसेवनपदेनतस्यैवो-
न्नानात्। अत्रस्फुटतयाशृंगारादिपदोपादानन्नकृतन्नतत्स्व-
रूपानिर्णयात् अनेनतुस्फुटएवतन्निर्णयः तथा हि शृंगारोद्वि-
निष्ठोद्विविध आश्रमयिषपभेदात् मलीविषयकः यसाश्रयकः
सत्कारविशेषणयोरत्युत्कर्षः मतिविषयनूः यद्वाश्रयकः पाद-
सेवनरूपोरत्युत्कर्षइतितत्रपूर्वस्य न भक्तित्वम् पत्युरपिभक्त--
त्वापत्तेरितिद्वितीयस्यैवभक्तित्वमितिस्फुटएवतत्स्वरूपनि--
र्णयः शृंगारादिपदोपादानेतुनैवसिद्धेत् पत्यावतिव्याप्तिश्चे-
तिदिक् अतएवदास्यात्पृथगुपादानम् अन्यथादासस्यापिपाद-

सेवनाधिकारितयातेनैवसिद्धमर्थ्यंस्पष्टमेव टीकाकाराणा-
मन्यथालापने भावानवबोधएवबीजम् कुशकाशावलम्बनन्या-
येनैवतल्लपनात् अतएवनह्यं तद्भक्त्याश्रयाणां नवानामभि-
युक्तोदाहृतानां मध्येपादसेवनोदाहरणेलक्ष्म्याउपादानं संग-
च्छते तथाहि ॥

श्रीविष्णोः श्रवणेपरीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने।
प्रह्लादः स्मरणेतदङ्घ्रिभजनेलक्ष्मीः पृथुः पूजने ॥
अक्रूरस्त्वभिवन्दनेकपिपतिर्दास्येथ सख्येर्जुनः।
सर्वस्वात्मनिवेदनेबलिरभूत्कैवल्यमेतेविदुरिति॥

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष।
कामास्तयः समचरन्भगवत्प्रपन्ना।
साश्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय।
यत्पादसौभगमलं भजतेनुरक्ता ॥

इति। बहुशोलक्ष्मीविषयेप्रतिपादितम् नवमे श्रीजनकनन्दि-
नीविषयेप्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यामिति दशमेतत्रगोपी-
विषये।

प्रणतदेहिनांपापकर्षणं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्
फणिफणार्पितंते पदाम्बुजंकृणुकुचेषुनःकृन्धिहृच्छयम्

कृन्धिहृच्छ्रयम् । चरणपङ्कजं शञ्जनं न्वतेरमणनः स्तनेष्वर्प्य याधिहन्निति ॥

वृन्दावनचम्पूकाव्येश्रृङ्गारमये ॥

वन्देकृष्णपदारविन्दयुगलंयस्मिन्कुरङ्गीदृशां ।
वक्षोजप्रणमीकृतेविलसतिस्निग्धाङ्गरागः स्वयम्

इतिदिक् तस्मात्पादसेवनपदेनश्रृङ्गारएवेतिमार्मिकाः नन्वभियुक्तोदाहरणेष्वात्मनिवेदनोदाहरणे सर्वस्वात्मनिवेदने--बलिरभूदित्युक्त्यात्मनिवेदनपदेनसख्यग्रहो विरुद्धइतिचेन्मैवम् तत्रग्रन्थ संख्य।भ्युपगमात् अतएवहरिणापिस्वशरीरं निवेदितम्प्रतिदिनन्तत्रयाति बलिरिन्द्रोभविष्यतीतिप्रसिद्धेः स्वसात्सुरेशलोकसमर्प्पणाश्चप्रतीयतेकिञ्च श्रीदामात्मनिवेदने हरिरभूदितितत्रपाठोवगन्तव्यः तत्रात्मनि परमेश्वरेजीवकर्तृकस्ववस्तुकर्मकनिवेदने श्रीदामा तथात्मनिजीवोपदेशकर्तृकस्वीय वस्तुकर्मकनिवेदनेहरिरितिप्रसिद्धैवकथा सख्यञ्चतयोः प्रसिद्धमेव श्रीदामात्मनिवेदनइत्यत्रपृथक् पदत्वंसप्तमी--समासोवेतिवोध्यम् युक्तञ्चैतत कुशजल याचनापहरणाभावान्यन्तरेणवितरणएवनिवेदनपदप्रयोगस्यानुभवसिद्धत्वादि-

तिदिक् तथा चापनिष्कर्षः पत्न्याः शृङ्गारः पादसेवनरूपत्वे-नदास्यविशेषरूपः पत्यासहशयनामना दिभिः सख्यविशेष-रूपः पत्युर्लालनादिकरणेवात्सल्याविशेषरूपः अतएवश्रीम-द्भागवतेपादसौभगमलम्भजतइतिसखउदेयिवानिति श्रीमद्रा-मायणे च 'दासीवच्च सखीवच्चमातृवच्चेतिप्रतिपादितम्' सुर-तसुखरूपतयाशृङ्गारव्यपदेशः सचक्षणिकः सोपिसख्यविशे-षएवोतनामान्तरत्वमेव प्रतिभाति न वस्त्वन्तरत्वमिति अतए-वशृंगं तत्प्रवृत्तिनिमित्तं सादृश्यादृच्छतिप्राप्नोतिशृङ्गारइति-निरुक्तिः ॥

त्वगस्सृङ्मांसमेदोस्थिद्धातवः शक्तिमूलकाः।
मज्जाशुक्रप्राणजीवधातवः शिवमूलकाः।
नवधातुरयंदेहोनवयोनिसमुद्भवः॥

इत्यागमवचनेनदेहावयवधातूनां नवत्वाच्छृंगस्यास्थि-भेदत्वमेव न वस्त्वन्तरत्वं नामान्तरत्वन्तुनिनिर्वादं तथाशृ-गारेपीतिभावः एवञ्चगौर्वाहीकइतिवच्छृंगाररसेचारोपित-शृंगत्वमिति शृंगारिणामारोपित शृंगित्वमितिसिद्धमिति विवेकिनां ततो भयं समुचितमित्यादिसूचितम् अतएवशृंगि-णोदशहस्तेनेत्यस्यादिनदूरतः परिवर्ज्जनमुक्तमभियुक्तैः तमो-द्वारमाहुर्योषितां संगिसंगमिति च श्रीमद्भागवते अत्र संग-

पदेनासक्तेरेवग्रहो तत्प्रतिषेधएवबोध्यः अतएवेश्वराणामृषी-णाञ्चतदभावेनदोषइतिबोध्यम् किञ्चभयप्रदत्वसादृश्येनापि-तदारोपः भयञ्चत्रयोऽव्यत्ययेन दिनातदुक्तम् श्रीमद्रामायणे ॥

नशोचामिप्रियादूरेनशोचामिहृतेति च ।
इदमेवहिशोचामिवयोस्याह्यतिवर्तते ॥

इति अनेनापिक्षणिकत्वं स्फुटमभिहितम् नित्यत्वेपि-लीलायाः प्राकृतप्रातिम्यमेवाभिप्रेतमिति च अथ च शृणा-तिदुःखमितिशृंगारइतिनिरुक्त्यावात्सल्यादित्रयेन्तर्भावःस्फु-टएवत्रिषुसुखजनकत्वाविशेषेण दुःखप्रणाशकत्वादितिदिक् भक्तिभेदेषुदास्यभेदपादसेवनरूपशृंगारस्यतदनुप्रतिपादनन्तु तत्रप्रायः साभिमानत्वरूपपरुषवाक्यत्वादिसत्वेनानमत्ववचन-नादितिदिक् अग्रदास्यभेदपादसेवनरूपशृंगारस्य पृथगुपा-दानेनतत्रद्वैविध्यस्फुटतया सह चर्य्येणसख्येप्यात्मनिवेदन-रूपभेदेनद्वैविध्यमुचितमेवेतिबोध्यम् एवञ्चशृंगारपरत्वकथा-स्थायिकसुखसमवेति ॥

मात्सर्य्यमुत्सार्यविचार्य्यमार्य्यैः ॥

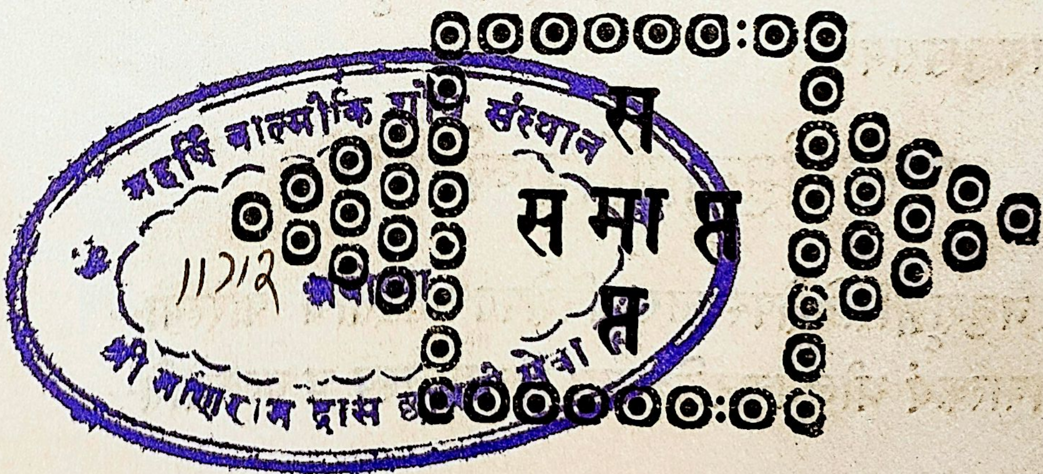
ननुशृङ्गारविशेषस्यसख्यविशेषतयातद्वताञ्च परित्या-गाभावात्कथं श्रीजनकनन्दिन्याः प्रियानुजस्य च तत्कथेति-

चेन्न सर्वं वाक्यं सावधारणमितिन्यायेनमित्रभावेनसम्प्राप्त--मित्यत्रमित्रभावेनैव सम्प्राप्तमित्यर्थात् प्रकृते च धर्म्मान्तर--स्यापिसद्भावात् किञ्च प्रथमप्राप्तावेवमित्रभावस्यहेतुतया प्र-कृतेतदभावात् ॥

किञ्चात्मावैजायते पुत्रइति ॥

स्मृत्यापुत्र संयोगसत्वेत्यागाभावात् किञ्चपरस्परप्री-तिविशेषशालितयापार्थवोपिशरीरतः स्वान्ततस्तदभावेनहा--नाभावात् स्नातादाविवस्वल्पकालव्यवहार्योपजन्मान्तरप्राप-कस्यहानाभावेनतस्यतत्वाभावाच्चेत्यलं श्रवणानहंकथयेति-शिवम् ॥

ससुयज्ञसमासदौहृदोमुनिमारीचहृदोविदोमुदे ॥
हृतयेतमसोनिशंतिशोभ्युदितः सख्यसरोज भास्करः ॥ १ ॥
इति श्रीमद्रामभद्रगुरुमित्रमभासत्रिपाठ्यु मापतिशर्मसम्मुदि--तसख्यसरोज भास्करोजयति ॥ वर्षेऽगाभ्राङ्कभूयुक्तेपौरेदर्शे-गुरोर्दिने उदिमायतमोहृत्यैस्वेषां सख्याब्जभास्करः ॥ २ ॥



पुस्तक मिलने का स्थान—

श्री चन्द्रेश्वरपतिजी त्रिपाठी

नयाघाट, श्रीअयोध्याजी

